किरीटिनी



भारतीय आत्मा

हिमकिरीटिनी

एक भारतीय आत्मा

२०००

प्रकाशक—
सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर,
जार्जटाउन, इलाहाबाद

दूसरा संस्करण
मूल्य २॥)

मुद्रक—
शालिग्राम वर्मा, एम. ए. बी. एस-सी.
सरस्वती प्रेस,
जार्जटाउन, इलाहाबाद

आत्म-निवेदन

सन् १६३६ में जब मैं त्रिपुरी कॉंग्रेस की तैयारी के समय जबलपुर में और फिर त्रिपुरी में रहा, उस समय चिरंजीव रामेश्वर गुरु ने मेरी कापियों में से जिन तुकबन्दियों को अपनी दृढ़ता से कापी कर लिया, उन्हीं का प्रायः यह संग्रह है। इसके पश्चात् १६४० ई० की 'जवानी' शीर्षक रचना इसमें मिला दी गयी और इसी पिछले सितम्बर महीने में, कोई दस तुकबन्दियाँ इस पुस्तक में मिलाने के लिए, भाई श्री शालिग्रामजी वर्मा की आशा पर, और भेज दी गयीं।

दृष्टि का काम बाहर को देखना भी है और भीतर को भी। जब वह बाहर को देखती है, तब रचनाओं पर समय के पैरों के निशान पड़े बिना नहीं रहते। जब वह भीतर को देखती है, तब मनोभावनाओं के ऐसे चित्रण कलम पर आ जाते हैं, जिन्हें समय के द्वारा शीघ्र पोंछा नहीं जा सकता—यदि मनोभावनाओं की सतह ऐसी हो जिसमें अगणितों का उल्लास और उनकी भावना प्रतिबिम्बित हो उठी हो, और जिनकी कहानी, अपने अवतरण में, दुहराहटों के दाग़ से बची रह सकी हो! यही कारण है कि नेत्र से दीखनेवाले सब कुछ की ओर से आँखें मूँद लेने पर उसका पता नहीं लगता; किन्तु भीतर को दीखनेवाली दुनिया, आँख मूँद लेने के बाद भी दीखती और सूझती रहती है, इसलिए वह समय के हाथों मिटाये नहीं मिटती। इसलिए, समय के निशानोंवाली वस्तु, समय बदलते ही अपना अस्तित्व खोने लगती है, और समय का नियन्त्रण करनेवाली, समय से परे की वस्तु, विश्व में 'क्लासिक' या संस्कृत' के नाम से पुकारी जाती रही है। युग का लेखक, न तो खुली आँखों से देखकर, उलट-पुलट होते जगत पर अपना रक्तदान करने से चूक सकता, न मुँदी आँखों की दुनिया में महामहिम मानव की कोमलतर और प्रखरतर मनोभावनाओं की पहुँच तक जाने से ही रुक सकता है।

प्रश्नोपनिषद् में कहा है कि—

"यहाँ यह ईश्वर, यह मन, अपने सपने में फिर-फिर अनुभव करता है; जो देखता है उसे, जिसे नहीं देख पाता है उसे; जो सुनायी देता है उसे, और जो सुनायी नहीं देता है उसे; जहाँ तक अनुभूति पहुँच पाती है उसे, और जहाँ तक अनुभूतियाँ नहीं पहुँच पायीं उसे भी; उस तक भी, जो है, और उस तक भी जो नहीं है। इन सब कुछ को वह देखता है।"

महोपनिषद् का यह कथन भी मानों कवि के ही लिए लिखा सा लगता है। "अपने परम अस्तित्व तक ऊँचे उठ कर रह सकना, मुक्ति है। युग का आकर्षण, अपने परमत्व से अस्तित्व का पतन है।" यह यदि कवि के युग-मोह पर नुकताचीनी है, तो अवतार-वाद पर इसे कड़वी आलोचना कहना पड़ेगा। किन्तु युग का गायक, युग के परिवर्तनों से आँखें मूँद कर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नहीं रख सकता। अस्तु, इसी तरह हृदय को वेदों में अनन्त धाराओं को छोड़ सकनेवाले समुद्र का स्वामी कहा है।

वस्तुओं में उनके रूप, स्वाद और उनकी उम्र की तरह घटते-बढ़ते रहनेवाले, तथा उनके अस्तित्व के कारण की तरह छुपकर अमर होकर बैठनेवाले तत्त्व को कौनसा नाम दिया जाय? मानव मनोभावनाओं के विकार मानव-निर्माण के दिन से भले ही सुसंस्कृत होते गये हों, किन्तु उनके स्रोत हैं गिने-चुने ही। तत्त्वश उनके मूल स्रोतों तक मन को पहुँचाने में यत्नशील रहा; कवि उन स्रोतों को उज्ज्वलरूप और बेदाग़ वाणी प्रदान करने में अपने स्वप्नों में जागरूक रहा। यही कारण है कि कवि मानव की, मानवी की, नदी की, पर्वत की, पत्थर की, पानी की, झरने की—किस-किस की ओर से नहीं बोला? उसकी बोली उसकी अनुभूति और आकलन का अनोखा आविष्कार बनकर आती रही। वह खुली आँखों के कौशल को भी रूप, रस और वाणी दान करता रहा और सूझ के पैरों अनुभूतियों तक पहुँचने के अपने मूक वैभव

को भी। शायद उसकी इसी बात के समर्थन में, अनन्त युगों के ऐसे पुराने लोग, जिनकी वाणी पुरानी नहीं हो पायी, कह गये हैं कि:—

"यदि मानव की महत्ता है जानना और सोचना, तो इन दोनों पक्षियों की उड़ान का प्राण है याद। और याद के इतिहास को पीछे खींचो, तो उसी दिन से मानव निर्मित होता चला आ रहा है।"

इसीलिए यादों के संग्रह की—और याद रखने जैसी दिशाओं की कामना और सूझ की सम्मिलित-मनोभावना-स्वामिनी को कौन सा नाम दिया जाय? कविता! यह नाम न जाने क्यों ज़रा छोटा पड़ता सा नज़र आता है। इस शब्द में से त्रिकालज्ञता का बोध जो नहीं निकलता! 'सूझ' तो, समय के तीनों टुकड़ों के अन्तःकरण में से गुज़र कर उन्हें छेदता हुआ, नित्य नवीनता के साथ बढ़ता जानेवाला मानवता का वह डोरा है, जिसपर सम्पूर्ण विश्व के जड़-चेतन का भान ठहरा हुआ है। इसीलिए सूझ के स्वामी एक युग बनाते हैं, दूसरे युग का पालन करते हैं और तीसरे युग को उखाड़ कर फेंकते जाते हैं। सूझ मानो मस्तिष्क के मौसम का संकेत और हृदय के हाथ-पाँवों का दिशा-दर्शन और पथ-संचालन है। सूझ विकास की साँस, विवेक की धड़कन और अस्तित्व का संवेदनशील परम कौशल है। जब सूझ खुली आँखों युग के शस्त्रों पर ज़ंग चढ़ते देखती है, तब 'युगध्वंस' में से, वह मानव का 'प्रलयंकर' और 'शंकर' भाव ढूँढ़ निकालती है, और उस दिशा में युग की वाणी बन जाती है। जब सूझ मानव-मनोभावनाओं के नये डोरे बनाने, और अस्तित्व पर, कामना, अनुभूति और समर्पण के कसीदे से काढ़ने लगती है, तब लोग उसकी युगों-युगों तक रक्षा करने के लिए, अपनी यादों के तहों में, अन्तःकरण के परदों में, और विकास की अमर अँगुलियों की उन खिलवाड़ों में छुपाकर रखते हैं, जिन्हें उन्होंने समय के बीते सिरे के रूप में इतिहास नाम भले ही दिया हो, किन्तु जिस मनोभाव, जिस दुख, जिस अनुभूति, जिस

कल्पना को, मानव समझता है कि भावों के युगों को उकसाने, दुलराने, और दिशा-दर्शन करने में काम आती रहेगी।

साँस और सूझ जिस तरह एक दूसरे के विद्रोही नहीं, उसी तरह एक तरफ़ विश्व के प्रलयंकर और कोमल परिवर्तन तथा युग का निर्माण तथा दूसरी तरफ़ हृदयोन्मेष तथा विश्व के विकास के वैभवशील कौशल—दोनों में कहीं विद्रोह नहीं दीख पड़ता। क्योंकि एक कवि के रक्त की पहचान और सिर का दान माँगती है, और दूसरी वस्तु में समा सकने के कोमलतर क्षणों के उच्चतर समर्पण का सुबूत चाहती है। एक कवि का निश्चय, और दूसरी कवि की अनुभूति बनकर रहना चाहती है। इनमें विषमता कहाँ? क्षण-क्षण बदलने का स्थायी स्वभाव रखनेवाले, सन्मुख के जगत में, और उसकी परिस्थितियों में, कवि चाहे जैसा विद्रोह और संघर्ष उपस्थित कर दे किन्तु हृदय और मस्तक की आँखों पर प्रतिबिम्बित होते प्रकट और अप्रकट कौशल में आपस का विद्रोह कैसा?

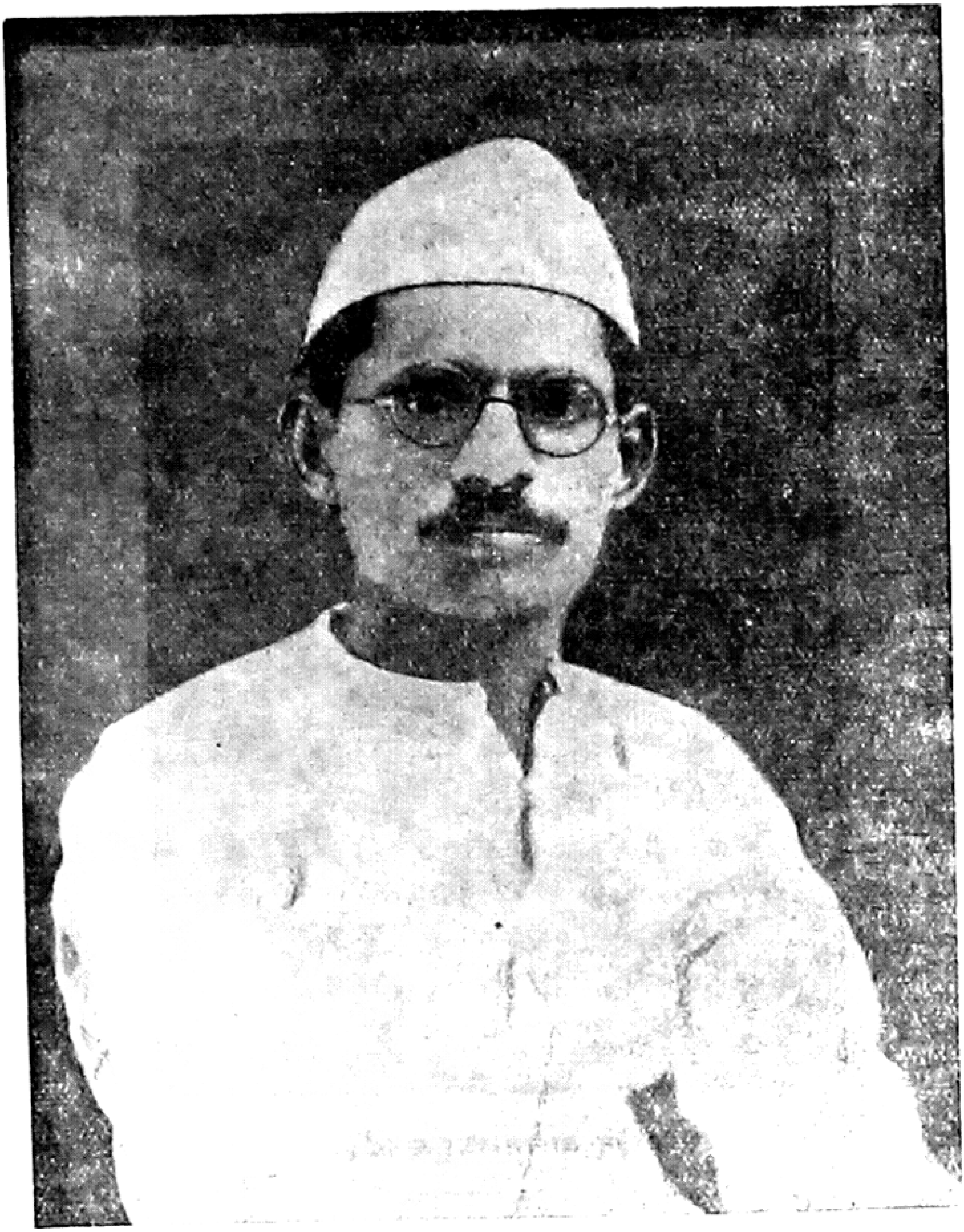
ख़ैर, इस कथन का कुछ भी सार मेरी तुकबन्दियों में कहाँ! यह तो मेरी लाचारियों का संग्रहमात्र है। इसे युग के देवता के सामने, उपस्थित करते समय एक झिझक के सिवा कोई और ईमानदार भाव मैं अपने में नहीं पाता।

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे मित्रों की नाराज़ियों का परिणाम, ख़ूब देरी से और देरी के कारण शायद रहा सहा महत्त्व भी खोकर, इस तरह फलित हुआ। गुरुजनों, मित्रों, स्नेहियों और तरुण साथियों की आज्ञा और इच्छा का पालन हो गया। 'अकेले शून्य' को अंक मानने जैसा ही यह सन्तोष हुआ!

हिमकिरीटिनी के प्रकाशन में मैं श्री भाई शालिग्राम वर्मा के कृपाभार को हृदय से स्वीकृत करता हूँ। वे, वर्षों बाद, प्रकाशन के चौरास्ते पर मुझे खींच ही लाये।

माखनलाल चतुर्वेदी

कविताएँ



स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी



पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

गीत

मैं अपने से डरती हूँ सखि !

पल पर पल चढ़ते जाते हैं,
पद-आहट बिन, री ! चुपचाप,
विना बुलाये आते हैं दिन,
मास, बरस ये अपने आप;
लोग कहें चढ़ चली उमर में,
पर मैं नित्य उतरती हूँ सखि !
मैं अपने से डरती हूँ सखि !

मैं बढ़ती हूँ ? हाँ;—हरि जानें
यह मेरा अपराध नहीं है,
उतर पड़ूँ यौवन के रथ से
ऐसी मेरी साध नहीं है;
लोग कहें आँखें भर आयीं,
मैं नयनों से झरती हूँ सखि।
मैं अपने से डरती हूँ सखि !

किसके पंखों पर, भागी
जाती हैं मेरी नन्हीं साँसें ?
कौन छिपा जाता है मेरी
साँसों में अनगिनी उसाँसें ?
लोग कहें उन पर मरती हैं
मैं लख उन्हें उभरती हूँ सखि।
मैं अपने से डरती हूँ सखि !

सूरज से बेदाग़, चाँद से
रहे अछूती, मंगल-वेला,
खेला करे वहीं प्राणों में,
जो उस दिन प्राणों पर खेला,
लोग कहें उन आँखों डूबी,
मैं उन आँखों तरती हूँ सखि।
मैं अपने से डरती हूँ सखि !

जब से बने प्राण के बन्धन,
छूट गये गठ-बन्धन रानी,
लिखने के पहले बन बैठी,
मैं ही उनकी प्रथम कहानी,
लोग कहें आँखें बहती हैं;
उन्हें आँख में भरती हूँ सखि !
मैं अपने से डरती हूँ सखि !

जिस दिन रत्नाकर की लहरें
उनके चरण भिगोने आयें,
जिस दिन शैल-शिखरियाँ उनको
रजत मुकुट पहनाने आयें,
लोग कहें, मैं चढ़ न सकूँगी—
बोझीली;—प्रण करती हूँ सखि !
मैं नर्मदा बनी उनके,
प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि !

मैं अपने से डरती हूँ सखि !

दो साधें

थके हुए दोनों पंखों को
झाड़, चलीं वे दोनों
टकराने का साधे हुए
उभाड़, चलीं वे दोनों,
एक ले चली चहल-पहल में
मुझे बनाने राजा,
और दूसरी ने निर्जन का
सुन्दर कोना साजा।
थल पर ? थलि पर ? कहाँ रहूँ ?
किससे अपना हृदय कहूँ ?

खिल कर भी गुलाब लिखता
है बाहर की बेचैनी,
भावों की बेलें गढ़ती हैं
जी में, सरग नसैनी;
एक, जागते में, जगती के
भाव विके सुख लहती,
और दूसरी अनजाने में
मिट जाने को कहती;
हाय, काँच के सपने क्रूर,
मत कर जीवन चकनाचूर !

मनुहार

यौवन-मद-झर सखि, जाग री !

आया है सँदेस जीवन का,
लाया है स्वर श्यामल घन का,
उड़ चल सजनि ! पंख तेरे हों,
राग और अनुराग री !

लगा वासनाओं का मेला
री, तूने सौभाग्य ढकेला,
फिसलन पर, कह तो अलबेली,
कैसे जागें भाग री ?

उड़ने में मत रख कुछ बाक़ी
मधु को फेंक—कहाँ का साक़ी ?
छोड़ झमेले, चल एकाकी,
रूठ न जाय सुहाग री !

बलिशाला ही हो मधुशाला,
प्रियतम-पथ हो देश-निकाला,
प्राणों का आसव हो ढाला,
गिरे न उसमें दाग़ री !

सुर हो, सुर को मधुर चुनौती,
अर्पण की निधियाँ हों न्यौती,
चढ़ना ही हो मान-मनौती,
व्रत हो राग विहाग री !

आयी चला-चली की वेला,
उजड़े आकर्षण का मेला,
है प्रियतम प्राणों पर खेला,
तू भी वैरिन जाग री !

उज्ज्वलता श्यामल हो आयी,
निश्वासों की बजी बधाई,
खेल गगन में सजनि ! रमन से
विश्व—विमोहन फाग री !
यौवन-मद-झर सखि, जाग री !

झरना

कितने निर्जन में दीखा,
रे मुक्त हार वाणी के!
कवि, मंजुल वीणा-धारी,
माँ जननी कल्याणी के।

किस निर्झरिणी के धन हो?
पथ भूले हो किस घर का?
है कौन वेदना? बोलो!
कारण क्या करुणा-स्वर का?

मेरी वीणा की कटुता,
धो डाल तरल तारों से,
मैं तुझ-सा पागल हो के,
बह उठूँ नयन-द्वारों से।

चढ़कर, गिरकर, फिर उठकर.
कहता तू अमर कहानी,
गिरि के अंचल में करता
कूजित कल्याणी वाणी;

इस ध्वनि पर प्रतिध्वनि करती
रह रह कर पर्वत-माला,
यह गुफा गीत गाती है
ओढ़े नव हरा दुशाला।

बे-जाना नाद सुनाता,
जाना सा जी में पाता,
अवनी-तल क्या, हीतल में,
तू शीतल धूम मचाता!

क्या तूने ही नारद को
सिखलाया ता ना ना ना?
क्या तुझसे ही माधव ने
सीखा था मुरलि बजाना?

क्या? मेरे गीत मधुर हैं?
पड़ गया तुम्हारा पानी!
ऊँचे नीचे टीलों से,
मैंने कब कही कहानी!

झरना

पाषाणों से लड़कर भी
ठंडक कब मैंने जानी ?
कब जी का मल धो पाया
मेरी आँखों का पानी ?

कब श्रमित पा सके मुझमें,
शीतल तुषार की धारा ?
मैंने प्रियतम के रुख, कब,
गिरकर उठकर पथ धारा ?

कब मेरी बूँदों. मेरे
हैं तट हरियाले होते ?
कब ग्वाले मुझमें आके,
अपने पाँवों को धोते ?

मैं गीत साँस में गुँथ कब
हर आठ पहर गाता हूँ ?
कब रवि शशि का समता से
स्वागत मैं कर पाता हूँ ?

मैं भू-मंडल को. कृति से
हूँ कुम्भीपाक बनाता,
तू स्वर्गंगा बन करके
सुर-लोक मही पर लाता;

लय मेरी प्रलय न करती
तरुणों के हिये उतर के.
तू कल-कल कहला लेता,
पंछी-दल पागल करके;

मेरी गरीब करुणा पर
'वे' मस्तक डोल न पाते,
तेरी गति पर तरु-तृण हैं,
अपनी फुँनगियाँ हिलाते।

मैं पथ के अवरोधों से,
पथ-भूला रुक जाता हूँ,
भारी प्रवाह होकर भी,
विषयों में चुक जाता हूँ,

पर, तेरे पथ को रोकें
जिस दिन काली चट्टानें,
साथी तरु-लता भले ही
तुझको लग जायँ मनानें;

तब भी तू ज़रा ठहर कर,
सीकर संग्रह कर अपने,
चट्टानों के मनसूबे
चढ़-चढ़ कर देता सपने।

झरना

तू हृदय वेध वज्रों के,
ले अपनी सेना शीतल,
प्रियतम-प्रदेश चल देता,
भर-श्याम भाव से ही तल।

मैं उपकारी के प्रति भी,
ममता बारूद बनाता,
हूँ अपनी कुटी जलाता;
उसके घर आग लगाता;

तू 'मित्र'-प्रमत्त-करों से
ग्रीषम में प्राण सुखाता,
पर उसका स्वागत गाकर
किरनों पर अर्घ्य चढ़ाता;

मेरे गीतों की प्यारे!
बूँदें न सूखने पातीं.
विस्मृति-पथ जोहा करतीं
अपना शृंगार बनातीं;

पर पंछी-दल ने तेरे
गीतों का गान किया है
हरि ने तेरी वाणी को
अमरत्व प्रदान किया है।

क्या जाने तरु-पंखेरू
तुझको लख क्यों जीते हैं ?
तेरा कलकल पीते हैं
या, तेरा जल पीते हैं ?

अपने पंखों से किसने
नभ-छेदन इन्हें सिखाया ?
आकाश लोक का किसने
इनको गन्धर्व बनाया ?

श्यामल घन ! श्वासों जैसी
बाँसुरी न दिखलाती है,
पर तेरे गीतों की धुन
स्वच्छन्द सुनी जाती है;

ये छोटे-छोटे तरुवर
रह रह तालें देते हैं,
तुझसे प्रसाद में प्यारे !
ठंडे, मोती लेते हैं;

कितने प्यारे तरु फूले,
कलियों का मुकुट लगाये,
पर तेरी गोदी में हैं
वे अपना शीश झुकाये;

फूलों को श्याम ! चढ़ा कर
जब वे सुगन्ध देते हैं,
पत्ते पंखे बन, मारुत
जब मन्द-मन्द देते हैं,

तू अपने पास न रख कर,
ज्यों का त्यों उन्हें बहाता,
लहरों में नचा-नचा कर,
प्रियतम के घर ले जाता।

वनमाली बन तरुओं में
तुझसे खिलवाड़ मचाते,
गिरि-शिखर, गोद लेने में
तुझ पर हैं होड़ लगाते;

जब श्यामल घन आ जाते,
तुझ पर जीवन ढुलकाते,
हँस-हँस कर इन्द्रधनुष का
वे मुकुट तुझे पहनाते;

मानों वे गले लिपट के,
कहते 'उपकार अमित है,
साँवले तुम्हारी करुणा,
बस तुमको ही अर्पित है।'

क़ैदी और कोकिला

क्या गाती हो !
क्यों रह रह जाती हो ?
कोकिल बोलो तो !
क्या लाती हो ?
सन्देशा किसका है ?
कोकिल बोलो तो !

कैदी और कोकिला

ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना!
जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है?
हिमकर निराश कर चला रात भी काली,
इस समय कालिमामयी जगी क्यूँ आली?

क्यों हूक पड़ी?
वेदना-बोझवाली सी;
कोकिल बोलो तो!
क्या लुटा?
मृदुल वैभव की रखवाली सी,
कोकिल बोलो तो!

बन्दी सोते हैं, है घरघर श्वासों का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है लोहे के दरवाज़ों का,
बूटों का, या सन्त्री की आवाज़ों का,
या गिननेवाले करते हाहाकार।
सारी रातों है-एक, दो, तीन, चार—!
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा! मधुर क्यों गाने आयी आली?

क्या हुई बावली ?
अर्द्ध रात्रि को चीख़ी,
कोकिल बोलो तो !
किस दावानल की
ज्वालाएँ हैं दीखीं ?
कोकिल बोलो तो !

निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप-वल्लरी चीर, हठ ठाने
दीवार चीर कर अपना स्वर अज़माने,
या लेने आयी इन आँखों का पानी ?
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !
खा अन्धकार. करते वे जग रखवाली
क्या उनकी शोभा तुझे न भायी आली ?

तुम रवि-किरणों से खेल.
जगत को रोज़ जगानेवाली,
कोकिला बोलो तो !
क्यों अर्द्ध रात्रि में विश्व
जगाने आयी हो ? मतवाली
कोकिल बोलो तो ?

कैदी और कोकिला

दूबों के आँसू धोती रवि-किरनों पर,
मोती बिखराती विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्मांड कँपाती उस उद्दंड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा।

तब सर्वनाश करती क्यों हो,
तुम, जाने या बेजाने ?
कोकिल बोलो तो !
क्यों तमोपत्र पर विवश हुई
लिखने चमकीली तानें ?
कोकिल बोलो तो !

क्या ?—देख न सकती जंज़ीरों का गहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश-राज का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूँ ?—जीवन की तान,
गिट्टी पर अंगुलियों ने लिक्खे गान ?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
ख़ाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूआ।
दिन में करुणा क्यों जगे, रुलानेवाली,
इसलिए रात में गज़ब ढा रही आली !

इस शान्त समय में,
अन्धकार को बेध, रो रही क्यों हो?
कोकिल बोलो तो!
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज
इस भाँति बो रही क्यों हो?
कोकिल बोलो तो!

काली तू, रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली,
काली लहर कल्पना काली,
मेरी काल कोठरी काली,
टोपी काली कमली काली,
मेरी लोह-शृंखला काली,
पहरे की हुंकृति की व्याली,
तिस पर है गाली; ऐ आली!

इस काले संकट-सागर पर
मरने की, मदमाती!
कोकिल बोलो तो!
अपने चमकीले गीतों को
क्योंकर हो तैराती!
कोकिल बोलो तो!

कैदी और कोकिला

तेरे 'माँगे हुए' न बैना,
री, तू नहीं बन्दिनी मैना,
न तू स्वर्ण-पिँजड़े की पाली,
तुझे न दाख खिलाये आली!
तोता नहीं; नहीं तू तूती,
तू स्वतन्त्र, बलि की गति कूती
तब तू रण का ही प्रसाद है,
तेरा स्वर बस शंखनाद है।

दीवारों के उस पार!
या कि इस पार दे रही गूँजें?
हृदय टटोलो तो!
त्याग शुक्लता,
तुझ काली को, आर्य-भारती पूजे,
कोकिल बोलो तो!

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली!
तेरा नभ भर में संचार
मेरा दस फुट का संसार!
तेरे गीत कहावें वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह!
देख विषमता तेरी मेरी,
बजा रही तिस पर रण-भेरी!

इस हुंकृति पर,
अपनी कृति से और कहो क्या कर दूँ ?
कोकिल बोलो तो !
मोहन के व्रत पर,
प्राणों का आसव किसमें भर दूँ ?
कोकिल बोलो तो !

फिर कुहू !...अरे क्या बन्द न होगा गाना ?
इस अन्धकार में मधुराई दफ़नाना ?
नभ सीख चुका है कमज़ोरों को खाना,
क्यों बना रही अपने को उसका दाना ?
फिर भी करुणा-गाहक बन्दी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियों की श्वासें धोते हैं !
इन लोह-सीखचों की कठोर पाशों में
क्या भर दोगी ? बोलो निद्रित लाशों में ?

क्या ? घुस जायेगा रुदन
तुम्हारा निश्वासों के द्वारा,
कोकिल बोलो तो !
और सवेरे हो जायेगा
उलट-पुलट जग सारा,
कोकिल बोलो तो !

नव स्वागत

तुम बढ़ते ही चले, मृदुलतर
जीवन की घड़ियाँ भूले,
काठ छेदने लगे, सहस-
दल की नव पंखड़ियाँ भूले;

मन्द पवन सन्देश दे रहा,
हृदय-कली पथ हेर रही,
उड़ो मधुप ! नन्दन की दिशि में
ज्वालाएँ घर घेर रहीं;

तरुण तपस्वी ! आ, तेरा
कुटिया में नव स्वागत होगा,
दोषी तेरे चरणों पर, फिर
मेरा मस्तक नत होगा।

कुंज कुटीरे यमुना तीरे

पगली तेरा ठाट !
किया है रतनाम्बर परिधान,
अपने काबू नहीं,
और यह सत्याचरण विधान !

उन्मादक मीठे सपने ये,
ये न अधिक अब ठहरें,
साक्षी न हों, न्याय-मन्दिर में
कालिन्दी की लहरें।

डोर खींच, मत शोर मचा,
मत बहक, लगा मत ज़ोर,
माँझी, थाह देख कर आ
तू मानस तट की ओर।

कौन गा उठा ? अरे !
करे क्यों ये पुतलियाँ अधीर ?
इसी क़ैद के बन्दी हैं
वे श्यामल - गौर - शरीर।

पलकों की चिक पर
हृत्तल के छूट रहे फ़व्वारे,
निश्वासें पंखे झलती हैं
उनसे मत गुंजारे;

यही व्याधि मेरी समाधि है,
यही राग है त्याग;
क्रूर तान के तीखे शर,
मत छेदे मेरे भाग।

काले अन्तस्तल से छूटी
कालिन्दी की धार
पुतली की नौका पर
लायी मैं दिलदार उतार,

बादबान तानी पलकों ने,
हा! यह क्या व्यापार?
कैसे ढूँढ़ूँ हृदय-सिन्धु में
छूट पड़ी पतवार!

भूली जाती हूँ अपने को,
प्यारे, मत कर शोर,
भाग नहीं, गह लेने दे,
अपने अम्बर का छोर।

अरे बिकी बेदाम कहाँ मैं,
हुई बड़ी तक़सीर,
धोती हूँ; जो बना चुकी
हूँ पुतली में तसवीर;

डरती हूँ, दिखलायी पड़ती
तेरी उसमें बंसी,
कुंज कुटीरे, यमुना तीरे
तू दिखता जदुबंसी।

अपराधी हूँ, मंजुल मूरत
ताकी, हा! क्यों ताकी?
बनमाली हमसे न घुलेगी
ऐसी बाँकी झाँकी।

अरी खोद कर मत देखे,
वे अभी पनप पाये हैं,
बड़े दिनों में खारे जल से,
कुछ अंकुर आये हैं,

पत्ती को मस्ती लाने दे,
कलिका कढ़ जाने दे,
अन्तर तर को, अन्त चीर कर,
अपनी पर आने दे,

ही-तल वेध, समस्त खेद तज,
मैं दौड़ी आऊँगी,
नील सिन्धु-जल-धौत चरण
पर चढ़कर खो जाऊँगी।

खीझमयी मनुहार

किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका ?
तुझे झाँकना पाप हुआ,
आग लगे, – वरदान निगोड़ा
मुझ पर आकर शाप हुआ !

जाँच हुई, नभ से भूमंडल
तक का व्यापक माप हुआ,
अगणित बार समा कर भी
छोटा हूँ—यह सन्ताप हुआ !

अरे अशेष ! 'शेष' की गोदी
तेरा बने बिछौना-सा !
आ मेरे आराध्य ! खिला लूँ
मैं भी तुझे खिलौना-सा !

सौदा

चाँदी - सोने की आशा पर,
अन्तस्तल का सौदा
हाथ-पाँव जकड़े जाने को,
आमिष - पूर्ण - मसौदा ?

टुकड़ों पर जीवन की श्वासें ?
कितनी सुन्दर दर है !
हूँ उन्मत्त, तलाश रहा हूँ,
कहाँ वधिक का घर है !

दमयन्ती के 'एक चीर' की—
माँग हुई बाज़ी पर,
देश-निकाला स्वर्ग बनेगा
तेरी नाराज़ी पर।

मरण-त्यौहार

नाश ने सागर तरंगें चीर कर,
गगन से भी कठिन स्वर गम्भीर कर,
तरलता के मधुर आश्वासन दिये,
किन्तु ओलों-से इरादों को लिये—

'सन्धि का सन्देश' भेजा है यहाँ;
पूछ कर. 'किसके कलेजा है यहाँ ?'
'राज-पथ की गालियाँ हमने सहीं,
प्रार्थनाएँ, पुस्तकें रचकर कहीं;

श्रेष्ठ हैं, वह विपिन है अपना अहा !
वध गजेन्द्रों का नहीं होता जहाँ !
है रिपोर्टों* में कलेजा छप रहा,'
देश के 'आनन्द-भवनों' ने कहा।

'कुरसियों की है मधुर स्वाधीनता,
छोड़ देंगे हम गुलामी, दीनता,
थैलियाँ हों, दे सकें हम गालियाँ,
हो सकें साम्राज्य की 'घरवालियाँ' ! '

देश का स्वातन्त्र्य गर्वित था जहाँ
पुण्यपुर के केसरी-दल† ने कहा।
'है हमें निर्वासनों में हरि मिला,
और तप करते विजय का वर मिला,

तप करो, गड़बड़ करो मत ! तप करो !
शान्ति में मत क्रान्ति का आतप करो!'
वंग-युग से, कोटि शिर झुकते जहाँ
भूल पथ, उस पाँडिचेरी ने कहा—

'ले कृषक सन्देश, कर बलि-वन्दना
ध्वज तिरंगे की करो सब अर्चना,
घूमता चरखा लिये, गिरि पर चढ़ो
ले अहिंसा-शस्त्र आगे ही बढ़ो।'

* नेहरू-रिपोर्ट, सन् १९२८ † पूना का केसरी-दल

क्यों न अब साबरमती पर नाज़ हो !
जब जवाहर शीश, मेरा ताज हो;
झिलमिले नक्षत्र थे, ग्रह भी बड़े,
श्री सुधाकर थे, उतरते से खड़े !

नाश का आकाश में तम-तोम था,
फैल कर भी, विवश सारा व्योम था !
उस समय सहसा सफ़ेदी बह उठी
मोम की पिघली शिखाएँ, कह उठीं :—

'नाश जी ! नक्षत्र यदि लाचार हैं,
श्री सुधाकर भी उतरते द्वार हैं,
तो जलेंगी तेल कर निज कामना,
आइये, मिटकर करेंगी सामना,

जानती हैं ज़ोर घर की वायु का,
जानती हैं समय, अपनी आयु का;
जानतीं बाज़ार दर अपनी अहो,
जानती हैं, वृष्टि के दिन, मत कहो;

जानती हैं—सब सबल के साथ हैं,
किन्तु रवि के भी हज़ारों हाथ हैं;
बे-कलेजे ही, कठिन 'तम' लाद कर,
अब श्मशानों को स्वयम् आबाद कर,

एक से लग एक, हम जलती रहें,
और बलि-बहनें बढ़ें, फलती रहें;
सूर्य की किरनें कभी तो आयँगी,
जलन की घड़ियाँ, उन्हें ले आयँगी।

थीं जहाँ पर भट्टियाँ सब बुझ पड़ीं,
विश्व में चिनगारियाँ आगे बढ़ीं;
देव जीने दो, विमल चिनगारियाँ,
ये खिली हैं आत्म-बलि की क्यारियाँ!

जम्बुकेश, चलो! जहाँ संहार है,
वन्य पशुओं का लगा बाज़ार है;
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ,
मोम-दीपों का मरण-त्यौहार है।'

छिपूँ ?—किसमें ?

वन में ? ना सखि, वनमाली में !
काली के सर के नर्तक,
उस काले-काले से ख्याली में ?

वन में ? ना सखि वनमाली में !

उड़ने दे, मुझको तू उस तक,
जिसने हैं अंगूर बखेरे,
सिर पर, नीलम की थाली में !

वन में ? ना सखि, वनमाली में !

जिसको बन्दी कर लेने को—
गूँथ रही बावली प्रतीक्षा,
मानस, यौवन की जाली में।
वन में ? ना सखि, वनमाली में !

जिसे .खुमारी चढ़ जाने को
पलकें पागलपन साधे हैं,
युगल पुतलियों की प्याली में।
वन में ? ना सखि, वनमाली में !

जिसकी साध-सुधा पाने को,
पंखिनियाँ चाहों की चहकीं,
उर तरु की डाली-डाली में !
वन में ? ना सखि, वनमाली में !

जिसे मनाने को मैं आली,
गली-गली सी बना भाग्य में,
ढूँढ़ रही गाली-गाली में।
वन में ? ना सखि, वनमाली में !

बिदा

बोल उठे क्या? रूप-राशि पर
पनपे हुए दुलार! बिदा,
सूरजमुखी सँभाल रही
किरनों का उपसंहार, बिदा।

अरी, दिवस की गाँठ, ठहर!
प्यारा तेरा आधार! बिदा,
'समय राज' के आमन्त्रण का
अमर सिरा 'लाचार'! बिदा।

किन्तु बिदाई आज हुई
सुलझी घड़ियाँ उलझाने को,
आँगन से जाता है वह
अन्तर में धूम मचाने को।

यह जी उठी निराशाओं के
लिख देने की आशा,
दर्शक ही बन गया बिचारा
एक अजीब तमाशा।

उमड़ा हर्ष, वेदनाओं का
बनने को अभिनेता,
'पिछड़न' प्यारी, बन जाने दे
मुझको अपना नेता।

जिसकी हुंकारों पर, गिन-गिन
सौ-सौ श्वासें वारीं,
आज वही कह उठा, बिदा दो
आयी मेरी बारी।

तू ने कब साधना बिखेरी?
कैसे तुझे पकड़ता!
साथ खेलता था, तेरे
पाने को कैसे अड़ता?

बिदा

बिना बुलाये आने वाले,
मैं किसलिए झगड़ता ?
रे नर्तक, 'लीलामय' कह कर
कैसे पैरों पड़ता ?

जहाँ जानने चला कि तूने
है अभिमता छिपाई,
सत्यानाश खिलखिलाहट का—
'बन्दे' चले, बिदाई !

पीड़ाएँ होवे निहाल
पाकर अपना अतिरेक,
बेचैनी बन रहे मधुर,
धड़कन की धुन की टेक !

बूँदें चुक जायें, आहों का
निकले आज दिवाला,
जमना-तट पर, तू होगा
मुझ-जैसा बंसीवाला।

माँगो कुछ इस बार—
समय आ पहुँचा है जाने का—
"नुसख़ा दो प्यारे,
स्मृतियों के दाह भूल जाने का।"

गिरि पर चढ़ते, धीरे-धीरे,

सूझ ! सलोनी, शारद-छौनी,
यों न छका, धीरे धीरे !
फिसल न जाऊँ, छू भर पाऊँ,
री, न थका, धीरे धीरे !

कम्पित दीठों की कलम करों में ले ले,
पलकों का प्यारा रंग ज़रा चढ़ने दे,
मत चूम ! नेत्र पर आ, मत जाय असाढ़,
री चपल चितेरी ! हरियाली छवि काढ़ !

ठहर अरसिके, आ चल हँस के,
कसक मिटा, धीरे धीरे !

गिरि पर चढ़ते, धीरे धीरे

झट मूँद, सुनहली धूल, बचा नयनों से
मत भूल, डालियों के मीठे बयनों से,
कर प्रकट विश्व-निधि रथ इठलाता, लाता
यह कौन जगत के पलक खोलता आता ?

तू भी यह ले, रवि के पहले,
शिखर चढ़ा, धीरे धीरे।

क्यों बाँध तोड़ती उषा, मौन के प्रण के ?
क्यों श्रम-सीकर बह चले, फूल के, तृण के ?
किसके भय से तोरण तरु-वृन्द लगाते ?
क्यों अरी अराजक कोकिल, स्वागत गाते ?

तू मत देरी से, रण-भेरी से
शिखर गुँजा, धीरे धीरे।

फट पड़ा ब्रह्म ! क्या छिपें ? चलो माया में,
पाषाणों पर पंखे झलती छाया में,
बूढ़े शिखरों के बाल-तृणों में छिप के,
झरनों की धुन पर गायें चुपके-चुपके

हाँ, उस छलिया की, साँवलिया की,
टेर लगे, धीरे धीरे।

तरु-लता सींखचे, शिला-खंड दीवार,
गहरी सरिता है बन्द यहाँ का द्वार,
बोले मयूर, जंज़ीर उठी झनकार,
चीते की बोली, पहरे का 'हुशियार'!

मैं आज कहाँ हूँ, जान रहा हूँ,
बैठ यहाँ, धीरे धीरे।

आतप का शासन, अमियों? अध-भूखे,
चक्कर खाता हूँ सूझ और मैं सूखे,
निर्द्वन्द्व, शिला पर भले रहूँ आनन्दी,
हो गया किन्तु सम्राट शैल का बन्दी।

तू तरु-पुंजों, उलझी कुंजों से
राह बता, धीरे धीरे।

रह-रह, डरता हूँ, मैं नौका पर चढ़ते,
डगमगी मुक्ति की धारा में, यों बढ़ते,
यह कहाँ ले चली, कौन निम्नगा धन्या!
वृन्दावन-वासिनि है क्या यह रवि-कन्या?

यों मत भटकाये, होड़ लगाये,
बहने दे, धीरे धीरे!
और कंस के बन्दी से कुछ
कहने दे, धीरे धीरे!

कलिका से–,
कलिका की ओर से–

—'क्यों मुसकादीं? बोलो आली!

जाड़ा है, रात अँधेरी है,
सन्नाटा है, जग सोया है,
फिर यह काँटों की टहनी है,
कैसे मुसका उठीं आली?'

—'क्या तुम्हें रात में दीख रहा?–
तुम योगी हो? अथवा उलूक?
क्यों हास्य बिखरता है, बोलो
कर कर मृदु सम्पुट टूक टूक?'

—'क्यों आँख खोल दीं ?
क्या अपना जग,
फूला-फूला सा दीखा ?
क्या मुँदी आँख में,

यह सपना जग
भूला - भूला - सा दीखा ?'
—'क्या इन पत्तों ने
जगा दिया कुछ

जाग जाग कर सूने में ?'
'क्या जागृति की
पुकार सुन ली
जागना छू लिया छूने में ?'

—'क्या कहूँ साँस वाले जग को
जो निस दिन सो-सो जगता है ?
क्यों मेरा जगना एक बार भी,
इसे अनोखा लगता है ?'

—'मेरा जगना, मेरा हँसना,
जग-जीवन का उल्लास कहाँ ?
मैं हँसूँ - मुँदूँ मन-चाही-सी
विधि का मुझ पर विश्वास कहाँ ?'

कलिका से—, कलिका की ओर से—

—'तुम हँसते हो चुप हो-होकर
चुप होकर मुसका जाते हो!
मैं हँसी, कौन सा पाप हुआ?
जो प्रश्न पूछने आते हो?'

—'कोमल रवि-किरनें आती हैं
वे मुझे ढूँढती घूम-घूम!
अपने बिजली से ओठों से
मेरा मुँह लेतीं चूम-चूम,

—'क्या कहूँ हवा से, वह वैरिन!
चुप, धीमे-धीमे आती हैं,
फिर मुझे हिलाती हौले से
मेरी आँखें खुल जाती हैं!

'पत्तों का, इन मदमत्तों का
वह झूम-झूम कर गा देना,
कुछ कभी ताल-सी दे देना,
कुछ यों चुटकियाँ बजा देना।'

—'पंखों से पवन जगा न उठे
यों ठंडी मेरी आग कहाँ?
मेरा मीठापन वह न उठे
वह काबू का अनुराग कहाँ?'

--'डूबते हुए इन तारों से
बोलूँ तो क्या बोलूँ आली !
इनकी समाधियों पर मेरी मुसकान ?
कौन थाती पाली ?'

--'मेरा हँसना वह हँसना है
जिससे मेरा उद्धार नहीं,
मेरा हँसना वह हँसना है
जिस पर टिक पाया प्यार नहीं।'

'मेरा हँसना वह हँसना है
जिसमें सुख का एतबार नहीं,
मेरे हँसने में मानव सा,
पापी विधि हुआ उदार नहीं।'

'जग आँख मूँदकर मरता है,
मैं आँख खोलकर मरती हूँ,
मेरी सुन्दरता तो देखो,
मरने के लिए उभरती हूँ !'

—'रवि की किरनों को तो देखो,
वे जगा विश्व व्यापार चलीं,
मेरी क़िस्मत ! वे ही मुझको
यों हँसा-हँसा कर मार चलीं।'

कलिका से--, कलिका की ओर से—

'मैं जगी कि जैसे मीठा सा,
प्रिय का कोई सन्देश जगा!
मधु बहा कि जैसे सन्तों का,
धीमे-धीमे सन्देश जगा!'

—'मैंने, हाँ! वर भी पाया. मैं
जिसकी गोदी में बड़ी हुई,
जिसका रस पी मधु-गन्धमयी
खिल-खिल कर ऊँची खड़ी हुई।'

'आयी बहार, मैं उसके ही
चरणों पर नत हो, झुकी सखी,
फिर जी की एक-एक पंखुड़ि,
उस पर बलि मैं कर चुकी सखी।'

—'मैं बलि का गान सुनाती हूँ,
प्रभु के पथ की बनकर फ़क़ीर,
माँ पर हँस-हँस बलि होने में,
खिँच, हरी रहे मेरी लकीर!'

तुम और, और मैं और

तुम बाहर के विस्तृत पर
दीवाने से हो दिन रात,
मैं? आत्म-निवेदन से कूजित
करता हूँ प्राण प्रभात।

तुम औरों को आदर्श-दान पर
हो हर दिन तैयार,
मैं अन्तरतम-वासी अपराधी,
पर अर्पित—लाचार।

तुम और, और मैं और

कैसे वीणा के तार मिलें?
तुम और, और मैं और,
कैसे बलि के व्यापार मिलें?
तुम और, और मैं और!!

जीवन में आग लगा डालूँ?
हँसकर कलिगड़ा गाऊँ?
मेरा अन्तरयामी कहता
है मैं मलार बरसाऊँ।

प्रभु-गर्भमयी वाणी को किसके
रुख पर खींचूँ-तानूँ?
हरि का भोजन केहरि को दूँ?
प्यारे, मैं कैसे मानूँ?

बलि से खाली कर बढ़ा चुका
दम्भी त्राणों का कोष;
अब तो माधव पर चढ़ने दो,
संचित प्राणों का कोष।

तुम जीते, मैं हारा भाई,
तुम और, और मैं और
मत रूठे हृदय-देव मेरा,
तुम और, और मैं और!!

तुम जगा रहे, विस्तृत हार को,
आकर गृह-कलह मचाने,
बहके, भटके, बदनाम विश्व-
स्वामी को पथ पर लाने।

मैं काले अन्तस्तल में
काली-मर्दन के चरणों में,
कहता हूँ—वंशी बजा,
गूँथ अर्पण के उपकरणों में।

मन-चाहा स्वर कैसे छेड़ूँ,
निर्दय पाने को त्राण,
जो धुन पर अर्पित हो न सकें,
किस क़ीमत के वे प्राण!

डूबा हूँ, किसको तैराऊँ?
तुम और, और मैं और,
मैं अपना हृदय वेध पाऊँ?
तुम और, और मैं और!!

'अपने अन्तर पर ठोकर दूँ?'
अज़माना है बेकार,
अपने उर तक अपनी ठोकर.
कैसे पहुँचेगी पार?

तुम और, और मैं और

यह भला किया, अपनी ठोकर
से मुझको किया पवित्र,
बस बना रहे मेरे जी पर,
तेरी ठोकर का चित्र।

निश्चय पर आत्म-समर्पण का
बल दे प्रतारणा तेरी,
धुँधली थी, उजली दीख पड़े,
अब माधव मूरत मेरी।

अपमान, व्यथित के ज्ञान बनो,
तुम और, और मैं और,
मुझसे जीवन क्यों बोल उठे?
तुम और, और मैं और!!

लाचार

रे, हुशयार, न गाहक कोई—
दूर दूर बाज़ार,
अब भी द्वार बचाकर चल तू,
लगते हैं बटमार!

अरे विभव-सम्भव के पन्थी,
यहाँ लूट है प्यारी,
अन्तर की टकसाल ढालती
हूँ, लाचार—भिखारी!

बड़े दिनों रखने पायी हूँ,
उन कन्धों पर झोली,
कर जीवन की लकुटी
उसके पीछे-पीछे हो ली!

अरे बीन तेरे तारों के
सिवा कौन सामान?
और समर्पण की ध्वनियों से
ख़ाली कैसा गान?

गूँथ हार, प्रियतम सँवार,
ऐ मोहन मोती वाले,
खीझ नहीं, होते गँवार
ही वृन्दाबन के ग्वाले।

सिपाही

गिनो न मेरी श्वास,
छुए क्यों मुझे विपुल सम्मान ?
भूलो ऐ इतिहास,
ख़रीदे हुए विश्व-ईमान !!
अरि-मुंडों का दान,
रक्त-तर्पण भर का अभिमान,
लड़ने तक महमान,
एक पूँजी है तीर-कमान !
मुझे भूलने में सुख पाती,
जग की काली स्याही,
दासो दूर, कठिन सौदा है
मैं हूँ एक सिपाही !

क्या वीणा की स्वर-लहरी का
सुनूँ मधुरतर नाद ?
छिः ! मेरी प्रत्यंचा भूले
अपना यह उन्माद !
झंकारों का कभी सुना है
भीषण वाद-विवाद ?
क्या तुमको है कुरु-क्षेत्र
हलदी-घाटी की याद ?
सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती,
मुट्ठी में मन-चाही,
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है,
मैं हूँ एक सिपाही !

खींचो राम-राज्य लाने को,
भू-मंडल पर त्रेता !
बनने दो आकाश ! ।छेदकर
उसको राष्ट्र-विजेता,
जाने दो, मेरी किस
बूते कठिन परीक्षा लेता,
कोटि-कोटि 'कंठों' जय-जय है
आप कौन हैं, नेता ?

सिपाही

सेना छिन्न, प्रयत्न खिन्न कर,
लाये न्योत तबाही,
कैसे पूजूँ गुमराही को
मैं हूँ एक सिपाही ?

बोल अरे सेनापति मेरे !
मन की घुंडी खोल,
जल, थल, नभ, हिल-डुल जाने दे,
तू किंचित मत डोल !
दे हथियार या कि मत दे तू
पर तू कर हुँकार,
ज्ञातों को मत, अज्ञातों को,
तू इस बार पुकार !
धीरज रोग, प्रतीक्षा चिन्ता,
सपने बनें तबाही,
कह 'तैयार' ! द्वार खुलने दे,
मैं हूँ एक सिपाही !

बदलें रोज़ बदलियाँ, मत कर
चिन्ता इसकी लेश,
गर्जन-तर्जन रहे, देख
अपना हरियाला देश !

खिलने से पहले टूटेंगी,
तोड़, बता मत भेद,
वनमाली, अनुशासन की
सूजी से अन्तर छेद!
श्रम-सीकर प्रहार पर जीकर,
बना लक्ष्य आराध्य,
मैं हूँ एक सिपाही, बलि है
मेरा अन्तिम साध्य!

कोई नभ से आग उगल कर
किये शान्ति का दान,
कोई माँज रहा हथकड़ियाँ
छेड़ क्रान्ति की तान!
कोई अधिकारों के चरणों
चढ़ा रहा ईमान,
'हरी घास शूली के पहले
की'—तेरा गुण गान!
आशा मिटी, कामना टूटी,
बिगुल बज पड़ी यार!
मैं हूँ एक सिपाही! पथ दे,
खुला देख वह द्वार!!

विद्रोह

नगर गड़ गये, महल गड़ गये,
गड़े किले, मीनारें;
मन्दिर मसजिद गिरजे सब की
भू में धँसी दिवारें,

शव धँस गये—नहीं जी शिव की
और विष्णु की मूरत;
सब गड़ गये भूमि में,
दिखती नहीं किसी की सूरत।

जहाँ भूमि पर पड़ा कि
सोना धँसता, चाँदी धँसती;
धँसती ही जाती पृथ्वी में
बड़ों-बड़ों की हस्ती,

हीरा मोती धँसते,
धँसते ज़री और कमख़ाब,
धँसते देखे राजमुकुट
गढ़ महलों के महराब।

शक्तिहीन जो हुआ कि
बैठा भू पर आसन मारे;
खा जाते हैं उसको
मिट्टी के ढेले हत्यारे!

मातृभूमि है उसकी, जिस
को उठ जीना आता है,
दहन-भूमि है उसकी, जो
क्षण-क्षण गिरता जाता है।

त्रिपुरी की नगरी ज़मीन में
गड़ी नर्मदा तट पर,
महलों के महराब लगे
हैं तालों के पनघट पर।

विद्रोह

माण्डवगढ़ गड़ता जाता है
नित्य धूल खाता है;
जन-समूह उसका शव-
दर्शन-पुण्य ! लूट आता है।

आज बना इतिहास बिचारा
निठुर प्रकृति का हास;
ले बैठी स्वातन्त्र-भावना
मिट्टी में सन्यास !

किन्तु एक मैं भी हूँ
किसी वृक्ष का छोटा दाना;
मुझको है महलों जैसे ही
मिट्टी में मिल जाना;

या कि कटा धड़ हूँ डाली का
मिट्टी में मिटता हूँ;
वर्षा की बूँदों से रह-रह !
मैं सन्तत पिटता हूँ,

मुझ पर भी जाड़ा आता है,
थर-थर प्राण सुखाता;
प्रबल प्रखरता अपनी बोता,
मैं ग़रीब थर्राता;

भूमि खींचती है मुझको
भी नीचे धीरे-धीरे;
किन्तु लहरता हूँ मैं नभ पर
शीतल मन्द समीरे!

मैंने मिट जाने में सीखा
है जगमें हरियाना;
मेरी हरियाली दुनिया है
मिट्टी में मिल जाना।

काला बादल आता है
गुरु गर्जन स्वर भरता है;
विद्रोही मस्तक पर वह
अभिषेक किया करता है।

विद्रोही हम हैं कि चढ़ाती
प्रकृति हमीं पर रूप;
कलियों के किरीट पहनाती
हमें बनाती भूप!

विद्रोही हैं हमीं, हमारे
फूलों में फल आते;
और हमारी क़ुरबानी पर
जड़ भी जीवन पाते,

कलम हमारी हो, या कोई
रहे हमारा दाना;
उसका है आराध्य जगत में
बस विद्रोह मचाना!

विद्रोही हम हैं कि हमारे
पत्र पींड जड़ छल कर;
औषध बना प्राण पाते हैं
पीड़ित हमें कुचलकर।

विद्रोही हम हैं पथिकों के
छायाघर हैं हम ही;
भूखे, तपन तपे जीवों के
आश्रयवर हैं हम ही!

हम निर्जन हैं, हम नन्दन हैं
हम ही दुर्गम वन हैं;
विद्रोही हैं, शस्य श्यामला
के हम जीवन-धन हैं!

हम हैं नहीं रूढ़ि की
पुस्तक के पथरीले भार;
नित नवीनता के हम हैं
जग के मौलिक उपहार!

उथल-पुथल सी करे जहाँ
तक वायु, बनी दीवानी;
और जहाँ तक वार
कर सके सीधा नभ का पानी,

जहाँ तलक सूरज की किरनें
जला सकें मनमानी,
जहाँ भूमि हो ऋतु की
निर्दयता की अकथ कहानी;

वहाँ लखो अपना
लहराना, हरियाना, मुस्काना,
विद्रोही सीखे विनाश पर
नित सौभाग्य बसाना!

छोटे बाग़ों को तुम देखो
हम हँस-हँस खिलते हैं,
पथरीले टीलों पर देखो
हम हाज़िर मिलते हैं!

दर्रे और घाटियों में
अपना शृंगार घना है;
गिरि की एड़ी से चोटी तक
बस सब कुछ अपना है!

जहाँ मनुष्य न पशु जा पायें
ख़तरे में हम आप;
विद्रोही हरियाते हैं
लहराते हैं चुपचाप!

गिरि-शृंगों में लिखी प्रकृति
की जयमाला बन आये,
आतप जले, मेह के
मारे, जाड़े के थर्राये;

सद्य - स्नाता, भू - रानी
के गोद भरे अहसान;
अत्याचारों में लहराने
वाले जग वरदान,

आतप रक्त-पिये——हम
वर्षा से वसूल कर लेते;
विद्रोही हैं——विश्व द्वार-पर
प्रतिपल धरना देते!

लोहे के फरसे आते
हैं, हमको खोद बहाने;
पगले, अपने महा ज़ोर की
महिमा वे क्या जाने?

ज्वाला जगी कि अपनी बलि
हम पहले देंगे प्यारे;
हम से ही बनते देखे
हैं दुनिया ने अंगारे,

मिट्टी में मिलना,
हरियाना, फिर होना अंगारे;
विद्रोही हैं—ये सब
कुछ होते अवतार हमारे!

जिसके आकर्षण से काले
बादल भू पर आते;
अपनी सब स्वर्गीय सुधा
चुपचाप विवश ढलकाते,

जिसके स्नेह-ज़ोर से
प्रलय-कारिणी आँखें मीचे,
बिजली तक, चीत्कार किये,
आ पड़ती भू पर नीचे;

ग्रह झुकते, तारागण झुकते
सब झुकते जिस ओर;
विद्रोही——हम, अज़माते
उस भू पर अपना जोर!

जहाँ स्नेह से पले प्यार
में हमको खिलना आता;
अपनी कलियों विश्व-हृदय
पर हमको मिलना आता;

किन्तु जहाँ सिर कटे कि हम
सौ गुने हुए तत्काल;
दिये किसी ने फूल
किसी ने काँटे दिये निकाल !

घातक कभी अकेला आये
पड़े प्राण-धन देना ?
विद्रोही हैं——गोद खिलाते
हिंस्र जन्तु की सेना !

काली मिट्टी, पीली मिट्टी
मिट्टी होवे, लाल;
अपने आकर्षण में हमको
कितना रखे सँभाल !

उस पर पद रख घन-वर्षण
में पा प्रभु का सन्देश;
कर ऊँचा शिर हम उठ
देते नभ-दिशि को तत्काल !

मिट्टी के तह फटते जाते
हम हैं उठते जाते;
विद्रोही हैं——जो उठते हैं
वे ही हैं हरियाते।

आयी जहाँ रुकावट हमको
वहाँ झगड़ते देखो;
दायें-बायें, सीधे, हमको,
आगे बढ़ते देखो।

हर विपदा पर, हर प्रहार पर,
हमें उमड़ते देखो;
और सनसने तूफानों में,
हमें अकड़ते देखो!

फल फेकेंगे कभी, फूल भी
फेकेंगे हम भू पर;
विद्रोही——पर अपना मस्तक
किये रहेंगे ऊपर!

नाश का त्यौहार

नाथ, मुझसे नेक बोलो,
इस जलन में स्वाद क्यों है?
एक अमर लुभावने से,
पतन में आह्लाद क्यों है!

क्यों न फिसलन में, पुराना-
पन कभी आता बताओ!
और चढ़ने में थकावट का
प्रबल अवसाद क्यों है?
बावली लतिका, बता यह
फूलने का मोह कैसा?
फूल नश्वर, अमर काँटे,
उन्हीं से जग-द्रोह कैसा!
टपक पड़ने के दिनों को
न्योतना हे फूल-डाली!
मिलन-तरु का आमरण फल,
यह विषाद-विछोह कैसा?

है मधुर कितना, कि भू में
अंकुरों का उपज आना
मोर-पंखों सा, कि पल्लव-
रूप का वाना सजाना,
एक लहर उठी कि माथा
भूमि पर, झुक झूम जाना,
और ज़ोर वढ़ा कि काले
कंकड़ों तक चूम जाना,
एक दिन जो फेंक देना है—
कि मधुर दुलार क्यों है?
कुचलने के बाद, हाहाकार
का शृंगार क्यों है?

एक झोंका वायु से ले,
सिर हिलाकर तुमक जाना,
और मीरा का मनोहर नृत्य
बनकर छुमक जाना,
भूमि से विद्रोह!—ऊँचा
सिर उठाना, खूब ऊँचा!!
पत्तियों की ताल बनकर
फिर स्वरों पर घुमक जाना,

अये, किस दिन के लिए
पतझड़ बना व्यापार क्यों है ?
लाड़िली, दुःखद बताकर,
नाश का त्यौहार क्यों है ?

पल्लवों के बीच से,
कलिका उठी क्यों सिर उठाये ?
क्यों उदार विनाश-वेला
के भ्रमर ने गीत गाये ?

क्यों बताओ क्षणिक फूलों
पर अमर काँटे सजाये ?
और खिलकर द्रुमों ने
वे कौन से उपहार पाये ?

एक माटी से उठी रेखा
कि कलियों तक खिंची थीं,
जगत आशिक़ था कि जब तक
फूल की आँखें मिचीं थीं ?

किन्तु धनुषाकार गिर कर
धूल पर जब फूल आया,
रोकने को राह में,
निन्दित बिचारा शूल आया !

पूछ कर ठिठका, कुसुम ! चढ़ना
कहाँ तू भूल आया ?
फूल रोया—नाश में, मैं
यार, दो दिन भूल आया ।

नाश के इस खेल में, ये
प्यार-सुम आते भला क्यों ?
नाश के संकेत तरु पर
ऊगते जाते भला क्यों ?

पतन की महिमा सजग, सुन्दर
लपकती जा रही है,
एक अनहोनी कहानी सी
टपकती जा रही है।

देख कर भी पुतलियाँ हँस-
हँस झपकती जा रही हैं—
और नाश-नरेश पर नव
मुकुट-मणियाँ आ रही हैं।

ज़रा बतला दो, कि क्षण-क्षण
जलन में यह स्वाद क्यों है ?
और अमर, लुभावने इस
पतन में आह्लाद क्यों है ?

नाश का त्योहार

नाश का ही खेल है—तो
विरह दुःख अगाध क्यों है ?
नाश का ही खेल है—तो
मस्त फिर एकाध क्यों है ?

नाश का ही खेल है—तो
यह पहेली ज़रा खोलो,
हर अमरतम नाश पर,
झट उगने की साध क्यों है ?

एक ओर—कि वस्तु जिसकी है
उसी के चरण-तल पर—
फूल-फूल बिखर गयी तो
नाथ, यह अपराध क्यों है ?

स्मृति

विधि हुआ बावला मेरे घर !
दिल फटा, किन्तु स्मृति रुकी रही,
यह गयी कौन सी जगह ठहर ?
विधि हुआ बावला मेरे घर !

बह गयी न यह क्यों आँसू में ?
उड़ गयी न यह क्यों साँसों में ?
क्यों हुई न जी में चूर-चूर ?
यह कसक रही है इधर किधर ?
विधि हुआ बावला मेरे घर !

 [illegible]

स्तुति

[illegible]

कितने कोमल सपने तेरे !
कितनी कठोर तेरी टाँकी !
फिर पत्थर पर ! किस लालच से !
यह बना गयी बाँकी झाँकी !
बस, अब मूरत बन गयी ठहर !
विधि हुआ बावला मेरे घर !

पत्थर में तुझे दिखा मोहन,
खोदा, ढूँढ़ा, तूने निज धन !
पर अब प्रहार क्यों ? क्रूर, ठहर-
सिर झुका, पूज अपना दिलवर,
भेजे से इसे उतार चुका,
अब इसे सँभाल कलेजे पर !
विधि हुआ बावला मेरे घर !

वरदान या अभिशाप ?

कौन पथ भूले, कि आये !
स्नेह मुझसे दूर रह कर
कौन से वरदान पाये ?

यह किरन-वेला मिलन-वेला
बनी अभिशाप होकर,
और जागा जग, सुला
अस्तित्व अपना पाप होकर;
छलक ही उट्ठे, विशाल !
न उर-सदन में तुम समाये।

उठ उसाँसो ने, सजन,
अभिमानिनी बन गीत गाये,
फूल कब के सूख बीते,
शूल थे मैंने बिछाये।

शूल के अमरत्व पर
बलि फूल कर मैंने चढ़ाये,
तब न आये थे मनाये—
कौन पथ भूले, कि आये ?

खोज

बैठा भी, तो लेकर पापिन
बिना तार की तन्त्री।
हरि जाने, किन बुरे दिनों
मैंने तुझको आमन्त्री।

पलकें पत्थर हुईं,
साँवले-शीश-महल की ओर,
कौन बढ़ाता है पुतली में,
गुदगुदियों का ज़ोर?

क्यों है यह अभिषेक?
किसे खो बैठे? धीर न लेश–
"व्याकुल हूँ; मेरे घर से,
आने को है सन्देश"।

यौवन रोता था; मैं
उस दिन गाता था कल्यान,
आँख मिचौनी खेल रहे थे,
शाप और वरदान।

घड़ियाँ जल-जल कर बनतीं,
प्रियतम-पथ की फुलझड़ियाँ,
चढ़ते थे एकान्त और
उन्माद बनाकर लड़ियाँ।

आज पुतलियों ने फिर
खोला चित्रकार का द्वार,
जीवन के कृष्णार्पण की
नीवें फिर उठीं पुकार।

याद नहीं,—'किसने पहुँचायी हैं
ये नागन स्मृतियाँ ?'
प्रिय, तेरी कठोर करुणा की
हैं ये कोमल कृतियाँ !

तेरी चाहों से व्याकुल
पुतलियाँ न अरे, बुझाऊँ ?
तो स्मृतियों के अंगारे
कैसे ठंडे कर पाऊँ ?

खोता हूँ, दावों की दुनिया में,
ले अपनी साख;
तुझे पुकारेंगे यह
जलता घर, अंगारे. राख।

रेती के कण-कण में ढूँढ़ा—
ज्यों योगी के प्रण में,
आग लगे उस तृण में,
सैनिक की कराह के व्रण में।

तितली के सँग नचा-नचा
कर दीं लाचार पुतलियाँ,
पर न मिले अलि, नहीं
श्याम-घन की वे स्नेहावलियाँ।

जी में आता है ढूँढूँ
अब लहरों वाला देश,
लाऊँ उसे, या कि कर दूँ
अपनी चाहें निश्शेष;

खतरे का चुम्बन है,
मेरी साधों का अवसान,
तुझे करूँ 'सरताज',
यहीं उलझे जीवन का ध्यान।

बलि के कम्पन में जो
आती भटकी हुई मिठास,
यौवन के बाजीगर,
करता हूँ उस पर विश्वास।

रूप और आकर्षण के,
मत पड़ने दे तू छाले,
फिर गाने वाले, चाहे
जिस क़ीमत पर अपना ले।

मधुर नील-मय देश,
ढूँढ़ता हूँ नभ के तारों में,
पथ ?—वह है, भारत के
मल्लाहों की पतवारों में।

हिन्द महासागर देने को
राज़ी हुआ न द्वार,
लाता हूँ वे घड़ियाँ
होवे बड़ा क़ाफ़िला पार।

तरुणाई है बोझ, रूप है
बलि का मधुर ख़ज़ाना,
सपना सच करने जाता हूँ,
मुझको अब न जगाना।

तिलक !

वज्रपात ! मर मिटे हाय हम !
रोने दो, संहार हुआ,
कसक कलेजे काढ़, दुखी हैं,
बुरे समय पर वार हुआ।

नभ कम्पित हो उठा, करोड़ों
में यह हाहाकार हुआ,
वही हाथ से गिरा, भँवर में
जो मेरा पतवार हुआ।

मैं ही हूँ, मुझ इकलौती ने,
अपना जीवन-धन खोया,
रोने दो, मुझ हतभागिन ने,
अपना मन-मोहन खोया।

आधी रात, करोड़ों बन्धन,
अन्यायों से झुकी हुई,
पराधीनता के चरणों पर,
आँसू ढाले रुकी हुई।

अकुलाते-अकुलाते मैंने
एक लाल उपजाया था,
था पंचानन 'बाल' खलों का
एक काल उपजाया था।

जिसने टूटे हुए देश के
विमल प्रेम-बन्धन जोड़े,
कसे हुए मेरे अंगों के
कुटिल काल-बन्धन तोड़े।

खड़ा हुआ निःशंक, शिवाजी पर
बलि होना सिखलाया;
जहाँ सताया गया, वहाँ वह
शीश उठा आगे आया।

बाग़ी, दाग़ी कहलाने पर,
ज़रा न मन में मुरझाया,
अगणित कसों ने सम्मुख
सहसा श्रीकृष्ण खड़ा पाया।

जहाँ प्रचारा गया, वीर
रण करने को तैयार रहा;
मातृ - भूमि के लिए, लड़ाका
मरने को तैयार रहा।

"तू अपराधी है तूने क्यों
गाये भारत के गीत वृथा,
तू ढोंगी बकता फिरता है क्यों
तुच्छ देश की कीर्ति-कथा ?"

तुझसों का रहना ठीक नहीं,
ले, देता हूँ काला पानी",
हे वृद्ध महर्षि, हिला न सकी
कायर जज की कुत्सित वाणी।

तू सहसा निर्भय गरज उठा,
'काला पानी सह जाऊँ मैं,
मेरे कष्टों से भारत-मा
के बन्धन टूटे पाऊँ मैं ?"

मैं "मुँह बन्दी" का हार हिये,
"मत लिखो" कठिन कंकण धारे,
"भारत-रक्षा" के शूलों की
पाँवों में बेड़ी झनकारे ;

'हथियार न लो' की हथकड़ियाँ,
'रौलट' का हिय में घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा,
कहती थी, आँचल लाल किये,

ये टूट पड़ेंगे, जरा, केसरी,
कम्पित, कर हुंकार उठे,
हाँ. आन्दोलन के धन्वा को
तू कर में ले टंकार उठे।

काश्मीर - कुमारी सुनते थे,
"भारत मेरा अविभाज्य रहे,"
"धन-वैभव की, सुख-साधन की
धुन, जीवन में सब त्याज्य रहे।"

"बलि होने की परवाह नहीं,
मैं हूँ, कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूँ,
माता के हाथ स्वराज्य रहे।"

"दहला दूँ सात समुद्रों को,
कहला लूँ हाँ. बल जान लिया,
लो अपना अपना राज्य करो,
अधिकार तुम्हारा मान लिया।"

तिलक

"मैं बूढ़ा हूँ, दिन थोड़े हैं,
चल बसने की बस बारी है,
जब तक भारत स्वाधीन न हो,
तब तक न मरूँ तैयारी है।"

"मजबूत कलेजों को लेकर,
"इस न्याय दुर्ग पर चढ़ो, चलो,
माता के प्राण पुकार रहे,
संगठन करो, बस चढ़ो, चलो।"

वह धन लाओ, जीवन लाओ,
आओ, लाओ दृढ़ डोर लगे,
प्यारा स्वराज्य कुछ दूर नहीं,
बस तीस कोटि का ज़ोर लगे।"

हाँ दूर नहीं—पर वज्र गिरा!
लाखों ममताएँ चूर—चले!
सदियों बन्धन में बँधी हुई
माँ की आँखों के नूर चले!

क्या भारत का पथ भूल गये,
या होकर यों मजबूर चले?
भैया, नैया भँवरों में है
बलवन्त अचानक दूर चले।

क्यों चल बसना स्वीकार हुआ,
बोलो-बोलो किस ओर चले ?
ये तीस करोड़ किसे पावें,
क्यों इन सबके शिरमौर चले ?

क्यों आर्य-देश के तिलक चले,
क्यों कमज़ोरों के ज़ोर चले ?
तुम तो सहसा उस ओर चले,
यह भारत माँ किस ओर चले ?

तुम पर सब बलि-बलि जावेंगे,
हे दानव घालक लौट पड़ो,
भावों के फूल चढ़ावेंगे.
हे भारत-पालक लौट पड़ो।

दुखियों के जीवन लौट पड़ो,
मेरे घन गर्जन लौट पड़ो !
जसुदा के मोहन लौट पड़ो.
सित काली-मर्दन लौट पड़ो !

शुचि प्रेम-बीज, सब हृदयों में
गाली खाते - खाते बोया,
सद्भावों से उसको सींचा,
उसका भारी बोझा ढोया,

राष्ट्रीयपने को रखने में
तूने अपनेपन को खोया;
गोपाल कृष्ण के जाने पर,
तू आशुतोष सहसा रोया !

तेरी हुंकारों का फल था,
अगणित वीरों ने प्राण दिया,
राष्ट्रीय-शक्ति ने तुझसे ही
अमृतसर में था त्राण लिया।

तुझको अब कष्ट नहीं देंगे,
हाथों में झंडा ले-लेंगे,
मंडाले के, क्या, शूली के,
कष्टों को सादर झेलेंगे।

इंग्लैंड नहीं नभ-मंडल में,
हम तेरे हैं, हो आवेंगे,
तूने नरसिंह बनाये हैं,
अपना तिलकत्व दिखावेंगे।

तू देख, देश स्वाधीन हुआ,
उस पर हम लाखों जियें-मरें,
बस, इतना कहना मान तिलक !
हम तेरे सिर पर तिलक करें।

अपने प्राणों पर खेल गया,
तू जेल गया, संहार हुआ,
तुझ पर 'शिरोल' के दोष लगे,
पीछे से कायर वार हुआ,

बूढ़ा क़ैदी लौटा ही था,
बस, लड़ने को तैयार हुआ,
घोषणा प्रकाशित होते ही,
पंडों में हाहाकार हुआ।

हुंकार सुनी, वह न्याय मरा,
विजयी सिंहासन डोल उठा,
'इसकी न सुनो तो इज़्ज़त है',
वह नीति-विधाता बोल उठा।

भारत को कुछ अधिकार मिलें?
ना, वह अधिकारों योग्य नहीं;
लकड़ी पानी ढोने वालों
को राज्य-शक्तियाँ भोग्य नहीं।

सागर की छाती चीर बली,
अधिकार उठाने टूट पड़ा;
उस पार्लिमेन्ट-कर से सहसा
रीफार्म एक्ट तब छूट पड़ा।

"मेरे जीते पूरा स्वराज्य
भारत पाये अरमान यही,"
बस शान यही, अभिमान यही,
हम तीस कोटि की जान यही।

दौड़ो, चरणों को ज़ोरों से
पकड़ो, 'अब कैसे जाओगे!
हम तीस कोटि हैं तिलक,
अकेले नहीं छूटने पाओगे!'

'बलवन्त रहे, मन-मोहन के
उसको उस ऊखल से जकड़ो!'
'वह चलता है, वह चलता है,
वह जाता है, पकड़ो! पकड़ो!'

'उसको पाना है, तो भारत
को घड़ियों में स्वच्छन्द करो:
वह क़ैदी है, उसको हृदयों
के वन्दीगृह में बन्द करो।'

स्वार्थी देवों को दूर हटा,
तुम भरतखंड में वास करो,
यह असहकारिता का युग है,
तुम आओ यहाँ प्रवास करो।

जो तुमको पाना इष्ट हुआ,
तो आया क्यों न यहाँ पर वह,
श्रीकृष्ण चोर है ! चला गया
जीवन-सर्वस्व चुराकर वह !

बन्दी होवे वह दयाहीन !
तू भारतीय आज़ाद रहे !
वह स्वर्ग टूट कर गिर जावे,
यह आर्यभूमि आबाद रहे !

मेरा उपास्य

'लो आया,' उस दिन जब मैंने
सन्ध्या - वन्दन बन्द किया,
क्षीण किया, सर्वस्व, कार्य के
उज्ज्वल क्रम को मन्द किया।

द्वार बन्द होने ही को थे,
वायु-वेग बलशाली था,
पापी हृदय कहाँ ? रसना में
रटने को बनमाली था !

अर्द्धरात्रि, विद्युत-प्रकाश, घन
गर्जन करता घिर आया,
लो जो बीते, सहूँ, कहूँ क्या,
कौन कहेगा, 'लो आया।'

'लो आया,' छप्पर टूटा है,
वातायन दीवारें हैं,
पल-पल में विह्वल होता हूँ,
कैसी निर्दय मारें हैं।

मैं गिर गया, कहा, क्या तू भी
भूल गया ममता माया;
सुनता था दुखिया पाता है,
तू कहता है. लो आया'।

'लो आया,' हा ! वज्र-वृष्टि है
निर्बल ! सह ले किसी प्रकार,
मेरी दीन पुकार, धन्य है
उचित तुम्हारी निर्दय ! मार।

आराधना, प्रार्थना, पूजा,
प्रेमांजली, विलाप. कलाप;
'तेरा हूँ', 'तेरे चरणों में
हूँ', पर कहाँ पसीजे आप !

सहता गया. जिगर के टुकड़ों
का बल. पाया हाँ, पाया;
आशा थी, वह अब कहता है,
अब कहता है, 'लो आया।'

'लो आया.' हा हन्त !
त्याग कर दुखिया ने हुँकार किया;
सब सहने, जीवित रहने
के लिए हृदय तैयार किया।

साथ दिया प्यारे अंगों ने,
लो कुछ शीश उठा पाया,
जलते ही पर शीतल बूँदें!
बिजली ने पथ चमकाया!

पर यह क्या? झोंकों पर झोंके,
उहँ! बस बढ़ कुछ झुँझलाया;
थर्राया, अकुलाया, ही सब कुछ
दिखला लो, लो आया।'

हाथ पाँव हिल पड़े, हुआ.
हाँ सन्ध्या-वन्दन बन्द हुआ,
ईंटें पत्थर रचता हूँ,
स्वाधीन हुआ! स्वच्छन्द हुआ!

टूटी-फूटी, कुटी, पधारें!
नहीं, यहाँ मेरे आवें,
मेरी, मेरी मेरी कह,
प्यारे चरणों से चमकावें!

दीन, दुखी, दुर्बल सबलों
का विजयी दल कुछ कर पाया;
नभ फट पड़ा, उजेला छाया,
गूँज उठा लो, 'लो आया।'

वीर-पूजा

पा प्यारा अमरत्व.
अमर आनन्द अभय पा,
विश्व करे अभिमान,
वीर्य-बल-पूर्ण, विजय पा;
जागृति जीवन - ज्योति
ज़ोर से हो, तू दमके,
परम कार्य का रूप बने,
वसुधा में चमके ;

तू भुजा उठा दे हे जयी !
जग चक्कर खाने लगे;
दुखियों के हिय शीतल बनें,
जगतीतल हुलसाने लगे।

तेरे कन्धों चढ़े,
जगत - जीवन की आशा,
तेरे बल पर बढ़े,
जाति, जागृति, अभिलाषा,
कसी रहे कटि कर्म-
महा - वारिधि तरने को,
गरुड़ छोड़, पद चलें,
दुखी का दुख हरने को।

वह प्रेम - सूत्र में गुँथ रहा,
दुखियों के मन का हार है;
वसुधा का बल संचार ही,
श्री चरणों का उपहार है।

आ, आहा ! यह दिव्य
देश - दर्शन दिखला, आ !
उलट - पलट के विकट
कर्म - कौशल सिखला, आ !

'जय हो'—यह हुंकार
हृदय दहलाने वाली !
काँप उठी उस
वन - प्रदेश की डाली डाली !

ले. श्री मनुष्यता मत्त हो,
विजयध्वनि आराधे खड़ी;
श्री प्रकृति - प्रेम पगली बनी
वीणा के स्वर साधे खड़ी।

आहा ! पन्द्रह कोटि
हार ले, आये आली.
जगमग - जगमग हुईं
कोटि पन्द्रह ये थाली,

अर्घ्य - दान के लिए
हिमालय आगे आये,
रत्नाकर ये खड़े,
धुलें श्री चरण सुहाये।

यह हरा - हरा भावों भरा
कर्मस्थल स्वीकार हो;
नवजीवन का संचार हो, क्यों हो ?
क्रांति हो, हुंकार हो।

बन्धन-सुख

आत्म-देव ! प्यारी हथकड़ियाँ
और बेड़ियाँ दें परितोष,
उतनी ही आदरणीया हैं,
जितना वह जय-जय का घोष ।

तू सेवक है, सेवाव्रत है,
तेरा ज़रा .कुसूर नहीं,
'शूली—वह ईसा की शोभा'
वह विजयी दिन दूर नहीं ।

'माता ! मेरे बधिकों का
काली - मर्दन कल्याण करें,
किसी समय उनके हृदयों में,
मानवता का भाव भरें !'

निःशस्त्र सेनानी

'सुजन, ये कौन खड़े हैं' ? बन्धु !
नाम ही है इनका बेनाम,
'कौन सा करते हैं ये काम ?'
काम ही है बस, इनका काम।

'बहन - भाई,' हाँ कल ही सुना,
अहिंसा, आत्मिक बल का नाम,
'पिता !' सुनते हैं श्री विश्वेश,
'जननि ?' श्री प्रकृति सुकृति सुखधाम।

हिलोरें लेता भीषण सिन्धु
पोत पर नाविक है तैयार,
घूमती जाती है पतवार,
काटती जाती पारावार।

'पुत्र-पुत्री हैं ?' जीवित जोश,
और सब कुछ सहने की शक्ति.
'सिद्धि-पद-पद्मों में स्वातन्त्र्य-
सुधा-धारा बहने की शक्ति।

'हानि ?' यह गिनो हानि या लाभ,
नहीं भाती कहने की शक्ति,
'प्राप्ति ?'—जगतीतल का अमरत्व,
खड़े जीवित रहने की शक्ति।

विश्व चक्कर खाता है
और सूर्य करने जाता विश्राम,
मचाता भावों का भू-कम्प,
उठाता बाँहें, करता काम।

'देह ?'—प्रिय यहाँ कहाँ परवाह
टँगे शूली पर चर्मक्षेत्र,
'गेह ?'—छोटा सा हो तो कहूँ
विश्व का प्यारा धर्मक्षेत्र।

'शोक ?'—वह दुखियों की
आवाज़ कँपा देती है मर्मक्षेत्र,
'हर्ष भी पाते हैं ये कभी ?'—
तभी जब पाते कर्मक्षेत्र।

फिसलते काल - करों से शस्त्र,
कराली कर लेती मुँह बन्द;
पधारे ये प्यारे पद - पद्म,
सलोनी वायु हुई स्वच्छन्द !

'क्लेश ?'—यह निष्कर्मों का साथ,
कभी पहुँचा देता है क्लेश;
लेश भी कभी न की परवाह,
जानते इसे स्वयम् सर्वेश।

'देश ?'—यह प्रियतम भारत देश,
सदा पशु-बल से जो बेहाल,
'वेश ?'—यदि वृन्दावन में रहे
कहा जावे प्यारा गोपाल !

द्रौपदी भारत माँ का चीर,
बढ़ाने दौड़े यह महाराज,
मान लें, तो पहनाने लगूँ,
मोर - पंखों का प्यारा ताज !

निःशस्त्र सेनानी

उधर वे दुःशासन के बन्धु,
युद्ध - भिक्षा की झोली हाथ;
इधर ये धर्म - बन्धु, नय-सिन्धु,
शस्त्र लो, कहते हैं—'दो साथ।'

लपकती हैं लाखों तलवार,
मचा डालेंगी हाहाकार,
मारने - मरने की मनुहार,
खड़े हैं बलि - पशु सब तैयार।

किन्तु क्या कहता है आकाश ?
हृदय ! हुलसो सुन यह गुंजार,
'पलट जाये चाहे संसार,
न लूँगा इन हाथों हथियार।'

'जाति ?'—वह मज़दूरों की जाति,
'मार्ग ?' यह काँटों वाला सत्य;
'रंग ?'—श्रम करते जो रह जाय,
देख लो दुनिया भर के भृत्य।

'कला ?'—दुखियों की सुन कर तान,
नृत्य का रंग - स्थल हो धूल;
'टेक ?'—अन्यायों का प्रतिकार,
चढ़ा कर अपना जीवन - फूल।

'क्रान्तिकर होंगे इनके भाव ?'
विश्व में इसे जानता कौन ?
'कौन सी कठिनाई है ?'—यही,
बोलते हैं ये भाषा मौन !

'प्यार ?'—उन हथकड़ियों से और
कृष्ण के जन्म-स्थल से प्यार !
'हार ?'—कन्धों पर चुभती हुई
अनोखी ज़ंजीरें हैं हार !

'भार ?'—कुछ नहीं रहा अब शेष,
अखिल जगतीतल का उद्धार !
'द्वार ?' उस बड़े भवन का द्वार,
विश्व की परम मुक्ति का द्वार !

पूज्यतम कर्म-भूमि स्वच्छन्द,
मची है डट पड़ने की धूम;
दहलता नभ-मंडल ब्रह्मांड-
मुक्ति के फट पड़ने की धूम !

बलि-पन्थी से

मत व्यर्थ पुकारे शूल - शूल,
कह फूल - फूल, सह फूल - फूल।
हरि को ही-तल में बन्द किये,
केहरि से कह नख हूल - हूल।

कागों का सुन कर्तव्य - राग,
कोकिल - काकलि को भूल - भूल।
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे,
तो चल रौरव के कूल-कूल।

भूखंड बिछा, आकाश ओढ़,
नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्मांड हथेली पर उछाल,
अपने जीवन - धन को निहार।

स्वागत

'जय हो !' उषःकाल है
सोये, माँ का स्वागत कौन करे ?
चरणों में मेरी कालिन्दी
की, अर्पित काली लहरें।

भूत काल का गौरव,
भावी की उज्वल आशाएँ ले,
लाट, क़िला, मीनार, सभी
को अपने दाएँ बाएँ ले,

इस तट पर बैठी - बैठी मैं
व्याकुल बिता रही घड़ियाँ,
चिन्तित थी ये बिखर न जायें,
वन - कुसुमों की पंखुड़ियाँ ?

यमुना का कलरव दुहरा कर,
कब से स्वागत गाती हूँ,
हरि जाने स्वागत गाती हूँ,
या सौभाग्य बुलाती हूँ!

देवि! तुम्हारे पंकज - कुसुमों से
दुखिया खिलना सीखे!
वीणा से, मेरी टूटी वीणा
का स्वर मिलना सीखे।

हो अंगुलि - निर्देश, ज़रा मैं
भी मिज़राब लगा पाऊँ,
लाओ पुस्तक, विश्व हिलाऊँ,
कोई करुण गीत गाऊँ।

लजवन्ती को लज्जित करती
हैं, हा हा मेरी गलियाँ,
चढ़ने को तैयार नहीं,
सकुचाती हैं सुन्दर कलियाँ!

वेदना गीत से

कम्पन के तागे में गूँथे
से क्यों लहराते हो?
मारुत ही क्यों, तरुवर
कुंजों में न विलम पाते हो?
और, पंछियों की तानों से
ज़रा न टकराते हो?

टेकड़ियों के पार, कहो,
कैसे चढ़ कर आते हो?
आगे जाते हो? या
मुझमें आकर छिप जाते हो?

भ्रमित की मति सी, परम गँवार—
आह की मिटती सी मनुहार—
पूँछती है तुम से दिलदार—
कौन देश से चले? कौन सी
मंज़िल पर जाते हो?

कसक, चुटकियों पर चढ़ कर,
क्यों मस्तक डुलवाते हो?
कम्पन के तागे में गूँथे
से क्यों लहराते हो?

क्या बीती है ?—आ
जाने दो उसको भी इस पार;
क्यों करते हो लहराने
का भूतल में व्यापार ?

चट्टानों से बनी विन्ध्य
की टेकड़ियों के द्वार—
वायु विनिन्दित तरलाई
पर, तैर रहे बेकार !

छटपटाहट को यों मत मार,
पहन सागर लहरों का हार,
खोल दे कोटि - कोटि हृद्वार ।
कहाँ भटकते यहाँ ? प्राण
लेते, बन राग बिहाग ।

शीतल अंगारों से विश्व
जलाने क्यों जाते हो ?
कम्पन के तागे में गूँथे
से क्यों लहराते हो ?

किसके लिए छेड़ते हो
अपनी यह तरल तरंग ?
किसे डुबाने को घोला है
यह लहरों पर रंग ?

कोई गाहक नहीं—अरे—
फिर क्यों यह सत्यानाश ?
बाँस, काँस, कुश से सहते हो,
लहरों का उपहास ?

अरे शदक क्यों रहा उँड़ेल ?
खेलता आत्मघात का खेल !
उजड़ता व्यर्थ स्वरों का मेल !
यह सब है किसलिए
बिना पंखों की मृदुल उड़ान ?

दूर नहीं होते, माना,
पर पास नहीं आते हो ?
कम्पन के तागे गूँथे
से बस लहराते हो।

मानूँ कैसे, कि यह सभी
सौभाग्य सखे, मुझ पर है !
है जो मेरे लिए, पास
आने में किस का डर है ?

मेरे लिए उठेंगी,
आशाओं में ऐसी ध्वनियाँ !
करुणा की बूँदों, काली
होंगी, उनकी जीवनियाँ !

और वे होंगी क्यों उस पार ?
यहीं होंगी, पलकों के द्वार,
पहन मेरी श्वासों के हार !
आह ! गा उठे—'हेमांचल
पर तेरी हुई पुकार,

बनने दे अपनी कराह को
परसों की हुंकार !
और जवानी को चढ़ने दे,
बलि के मीठे द्वार।
सागर से धुलते चरणों से
उठे प्रश्न इस वार—

'अन्तस्तल से अतल - वितल
को क्यों न कँपा पाते हो ?
अजी, वेदना - गीत गगन को
क्यों न छेद जाते हो ?

उस दिन ? जिस दिन महा-नाश
की धमकी सुन पाते हो !
कम्पन के तागे में गूँथे
से क्यों लहराते हो ?

आँसू

आहा ! कैसे गिरे सीपियों से
ये गरम - गरम मोती ?
जगमग हृदय किये देती है,
टपक - टपक जिनकी जोती ।

क्यों ये चढ़ने लगीं चमेली
की कोमलतर कलिकाएँ,
हार बनाती हुईं, हृदय पर,
बिखर - बिखर दाएँ बाएँ ?

क्यों रह-रह, बह-बह देते हैं,
क्या अपराध किया मैंने ?
क्या भीतर करुणाब्धि छिपा है,
ये आ गये पता देने ?

क्या दूषित प्रतिबिम्ब पड़ गया,
अतः स्वच्छतर होने को,
छूटे हैं अमृत के सोते,
मृदुल पुतलियाँ धोने को ?

जिन नयनों से जीवन-धन देखा,
उनसे आसानी से—
और न दीखे, अतः भर दिया,
उन्हें हृदय के पानी से ?

अथवा कई मास का ग्रीषम
रहा घनों को उमड़ाता,—
उन्हें सुयोग - वायु आदर से
दौड़ पड़ा द्रुत बरसाता ?

सिंचित था जो हृदय-कोष में
करुणा - रस पूरित सामान;
उसे बहाने बैठ पड़ी हो,
आया जान नया मेहमान ?

जिसने अपनी भूख बुझायी
कारागार प्रहारों से,
उसकी प्यास मिटाती हो क्या
नयनों की जलधारों से ?

छूटा हुआ बाण हूँ क्या
मैं ? धार मोथरी सी जानी,
धन्वा पर चढ़ने के पहले
चढ़ा रही उस पर पानी ?

जीवित पाया जो मुरझाया,
ग्रीषम की नादानी से,
अथवा पौधा सींच रही हो,
वनमालिनि इस पानी से ?

बलि होने में वज्र-हृदय हो,
करते लख खींचा - तानी,
राष्ट्र देवि ! करने आयी हो
क्या मुझको पानी - पानी ?

चोर डाँकुओं का साथी हूँ,
दूषित हुआ छिद्र छल से,
करती हो पढ़ मन्त्र प्रेम का,
मुझे पवित्र नेत्र - जल से ?

भ्रम हो गया साधना साधी,
देव बना, ऐसा अविवेक,
होने से करने बैठी हो क्या
यह तुम मेरा अभिषेक ?

मातृ भूमि-हित के कष्टों का
राज्य पुनः पाऊँ सविवेक,
सिंहासन मिलने के पहले,
क्या यह करती हो अभिषेक ?

आती है स्वातन्त्र्य - देवता,
उसके चरण धुलाने में,
सिखा रही हो साथी होऊँ,
अविरल अश्रु बहाने में !

कठिन क्रूरताओं से देखा
विदलित हुआ हृदय सारा,
अमृत-सोतों छोड़ रही हो,
गरम - गरम यह जल - धारा ?

उड़ा प्रेम - पिंजड़े का पाला
हंस, पलट आया यह लख,
नयन - सीपियों के ये मोती,
चुगा रही हो ? लख - लख ?

स्नेह - सिन्धु की नादों को सुन,
हृदय - हिमालय तज अपना,
व्याकुल होकर दौड़ पड़ीं क्या
ये दोनों गंगा जमना ?

हृदय - ज्वर व्याकुल करता था,
मिलन - वटी से साधा काज,
उतरा ताप इसी से वहता,
नयनों - द्वार पसीना आज ?

"स्नेह दूध कब से रक्खा है ?
लूँ नवनीत चला कर वक्र,"
उसे जमाने डाल रही हो,
हृदय-भांड से प्यारा तक्र ?

कहती हो क्या, 'आर्य भूमि की
श्री गोपाल लाज राखें ?'
तब तक दम मत लो जब तक
हैं, मेरी अश्रु-भरी आँखें ?

हृदय देश से आते हैं क्या
देवि ! पवित्र विचार सुरेश,
विमल वारि के पथ - सिंचन से.
है स्वागत का यत्न विशेष ?

श्री स्वतन्त्रता की वेदी पर,
प्राण पुष्ट होकर निश्चल,
देख, चढ़ा, पूजा-हित लायी,
नयनों की गंगा का जल ?

आँसू

मैं जाता हूँ, युद्ध - क्षेत्र में,
अश्रु - बिन्दु से अतः निडर,
लिखती हो, 'जीतो तो लौटो!'
पृष्ठ पत्र पर ये अक्षर?

कहीं हृदय में पहुँच न जाये,
लगा न पाये पथ का शोध,
तज विरोध, ठाना है आँसू
से दृढ़तर निष्क्रिय प्रतिरोध?

दूषित लख नवनीत हृदय की
ज्वालाएँ पहुँचाती हो,
खौला कर खारा जल दे - दे,
उसको शुद्ध बनाती हो?

गोल उपल को शिव-स्वरूप गिन,
पूजन कर, हो रही सफल,
जीवन - घट की युगल - बिन्दुएँ,
टपकाती हैं गंगा - जल?

कच्ची मिट्टी का पुतला हूँ,
दे - दे नयनों की जल - धार,
पंक बनाती हो? करती हो
क्या माँ का मन्दिर तैयार?

जवानी

प्राण अन्तर में लिये, पागल जवानी !
कौन कहता है कि तू
विधवा हुई, खो आज पानी ?

चल रहीं घड़ियाँ,
चले नभ के सितारे,
चल रहीं नदियाँ,
चले हिम-खंड प्यारे;
चली रही है साँस,
फिर तू ठहर जाये ?
दो सदी पीछे कि
तेरी लहर जाये ?

पहन ले नर-मुंड-माला,
उठ, स्वमुंड सुमेरु कर ले;
भूमि सा तू पहन बाना आज धानी
प्राण तेरे साथ हैं, उठ री जवानी !

द्वार बलि का खोल
चल, भूडोल कर दें,
एक हिम-गिरि एक सिर
का मोल कर दें,
मसल कर, अपने
इरादों सी, उठा कर,
दो हथेली हैं कि
पृथ्वी गोल कर दें ?

रक्त है ? या है नसों में क्षुद्र पानी !
जाँच कर, तू सीस दे दे कर जवानी !

वह कली के गर्भ से, फल-
रूप में, अरमान आया !
देख लो मीठा इरादा, किस
तरह, सिर तान आया !
डालियों ने भूमि रुख लटका
दिये फल, देख आली !
मस्तकों को दे रही
संकेत कैसे, वृक्ष-डाली !

फल दिये ? या सिर दिये ? तरु की कहानी,
गूँथ कर युग में, बताती चल जवानी !

श्वान के सिर हो—
चरण तो चाटता है!
भौंक ले—क्या सिंह
को वह डाँटता है?
रोटियाँ खायीं कि
साहस खा चुका है,
प्राणि हो, पर प्राण से
वह जा चुका है।

तुम न खेलो ग्राम-सिंहों में भवानी!
विश्व की अभिमान मस्तानी जवानी!

ये न मग हैं, तव
चरण की रेखियाँ हैं,
बलि दिशा की अमर
देखा-देखियाँ हैं।
विश्व पर, पद से लिखे
कृति लेख हैं ये,
धरा तीर्थों की दिशा
की मेख हैं ये।

प्राण-रेखा खींच दे, उठ बोल रानी,
री मरण के मोल की चढ़ती जवानी।

टूटता - जुड़ता समय
'भूगोल' आया,
गोद में मणियाँ समेट
खगोल आया,
क्या जले बारूद ?—
हिम के प्राण पाये !
क्या मिला ? जो प्रलय
के सपने न आये।
धरा ? - यह तरबूज़
है दो फाँक कर दे,

चढ़ा दे स्वातन्त्र्य-प्रभु पर अमर पानी।
विश्व माने—तू जवानी है, जवानी !

लाल चेहरा है नहीं—
फिर लाल किसके ?
लाल खून नहीं ?
अरे, कंकाल किसके ?
प्रेरणा सोयी कि
आटा - दाल किसके ?
सिर न चढ़ पाया
कि छापा-माल किसके ?

वेद की वाणी कि हो आकाश-वाणी,
धूल है जो जग नहीं पायी जवानी।

विश्व है असि का?—
नहीं संकल्प का है;
हर प्रलय का कोण
काया - कल्प का है;
फूल गिरते, शूल
शिर ऊँचा लिये हैं;
रसों के अभिमान
को नीरस किये हैं!

खून हो जाये न तेरा देख, पानी,
मरण का त्यौहार, जीवन की जवानी।

अमर राष्ट्र

छोड़ चले, ले तेरी कुटिया,
यह लुटिया - डोरी ले अपनी,
फिर वह पापड़ नहीं बेलने,
फिर वह माला पड़े न जपनी।

यह जाग्रति तेरी तू ले ले,
मुझ को मेरा दे दे सपना,
तेरे शीतल सिंहासन से
सुखकर सौ युग ज्वाला तपना।

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया,
मैं बलि - पथ का अंगारा हूँ,
जीवन - ज्वाल जगाता आया।

एक फूँक, मेरा अभिमत है,
फूँक चलूँ जिससे नभ जल थल,
मैं तो हूँ बलि - धारा - पन्थी,
फेंक चुका कब का गंगाजल।

इस चढ़ाव पर चढ़ न सकोगे,
इस उतार से जा न सकोगे,
तो तुम मरने का घर ढूँढ़ो,
जीवन-पथ अपना न सकोगे।

श्वेत केश ?—भाई होने को—
हैं ये श्वेत पुतलियाँ बाकी,
आया था इस घर एकाकी,
जाने दो मुझको एकाकी।

अपना कृपा - दान एकत्रित
कर लो, उससे जी बहला लें,
युग की होली माँग रही है,
लाओ उसमें आग लगा दें।

मत बोलो वे रस की बातें,
रस उसका जिसकी तरुणाई,
रस उसका जिसने सिर सौंपा,
आगी लगा भभूत रमायी।

जिस रस में कीड़े पड़ते हों,
उस रस पर विष हँस-हँस डालो;
आओ गले लगो, ऐ साजन!
रेतो तीर, कमान सँभालो।

हाय, राष्ट्र - मन्दिर में जाकर,
तुमने पत्थर का प्रभु खोजा!
लगे माँगने जाकर रक्षा,
और स्वर्ण - रूपे का बोझा?

मैं यह चला पत्थरों पर चढ़,
मेरा दिलवर वहीं मिलेगा,
फूँक जला दें सोना - चाँदी,
तभी क्रान्ति का सुमन खिलेगा।

चट्टानें चिंघाड़ें हँस - हँस,
सागर गरजे मस्ताना सा,
प्रलय राग अपना भी उसमें,
गूँथ चलें ताना - बाना सा,

बहुत हुई यह आँख-मिचौनी,
तुम्हें मुबारक यह वैतरनी,
मैं साँसों के डाँड उठा कर,
पार चला, लेकर युग-तरनी।

मेरी आँखें, मातृ भूमि से
नक्षत्रों तक, खींचें रेखा,
मेरी पलक - पलक पर गिरता
जग के उथल-पुथल का लेखा !

मैं पहला पत्थर मन्दिर का,
अनजाना पथ जान रहा हूँ,
गड़ूँ नींव में, अपने कन्धों पर
मन्दिर अनुमान रहा हूँ।

मरण और सपनों में
होती है मेरे घर होड़ा होड़ी,
किसकी यह मरजी-नामरजी,
किसकी यह कौड़ी-दो कौड़ी ?

अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र
यह मेरी बोली !
यह 'सुधार' 'समझौतों' वाली
मुझको भाती नहीं ठठोली।

मैं न सहूँगा—मुकुट और
सिंहासन ने वह मूछ मरोरी,
जाने दे, सिर, लेकर मुझ को,
ले सँभाल यह लोटा-डोरी !

पूजा

मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?
मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

तरु-बेलों की बाँहें मरोड़—
उनका फूला जी तोड़-तोड़,
तुझ पर वारूँ तब मेरे जी से—
तेरे जी का जुड़े जोड़,

मेरे कोमल ! किस कीमत पर
यह कर्कशता किससे होगी ?
मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

जगते जीवन में तुम गाते—
सपनों के गीतों में आते,
मेरी गाढ़ी निंदिया-रानी की
गाढ़ मधुरता बन जाते;

ऐ मेरी साँस, तुम्हें बिलगा दूँ ?
वह पूजा किसकी होगी ?
मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

चढ़ चुकीं हिलोरें तुम पर वे
जो-जो मेरे जी में आयीं,
मेरी करनी के काँटों पर
तेरी चुम्बन कलियाँ छायीं,

जब निस-दिन अलख जगाता हूँ
तब नयी प्रार्थना क्या होगी ?
मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी !

जी में ठोकर खा एक बार,
मेरी आँखों में बार-बार—
बन कर सेना तरलाई की
तुम चढ़ आते मेरे उदार !

पूजा

साजन ! जो तुम्हें बहा दूँ तो,
फिर अंजलियाँ किसकी होंगी ?
मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

ये कोटि - कोटि भावना - पुंज
विहरित हो-हो जी के निकुंज,
अग-जग में फैले जाते हैं,
छोटा पा मेरा प्राण - कुंज ;

जो प्राण चढ़ें तो शेष बचे
गीतों की धुन कैसी होगी ?
मेरे राजा; मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

मैं कैसे तुम्हें फेक डालूँ
तुम निश्वासों पर छाते हो,
मैं कैसे तुम्हें गिरा डालूँ
तुम आँसू बन कर आते हो !

जो साँस और आँसू दोनों
हों बन्द, अर्चना क्या होगी ?
मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

मैंने तूली ली, और भैरवी
का स्वर बन कर तुम आये,
जो मैंने स्वर साधा तो तुम
पुतली पर चित्रित हो आये ;

जब चित्र और गीतों, दोनों
में बन्द न कर लूँ ऐ दिलबर,
तब तुम्हीं बताओ प्राण !
सजल प्राणों अर्चा कैसे होगी ?

मेरे राजा, मत मान करो
मुझ से पूजा कैसे होगी ?

गीतों के राजा

मेरे गीतों के राजा ! तुम
मेरे गीतों में वास करो

थक चुका, कि मैं कैसे डोलूँ ?
इन गीतों के बेगाने में,
मर चुका, कि मैं किससे बोलूँ ?
इन गीतों के वीराने में !

मेरी उसाँस की दुनियाँ का
अब और न सत्यानाश करो;
मेरे गीतों के राजा ! तुम
मेरे गीतों में वास करो।

नभ रिमझिम रिमझिम बरस उठा,
सूरज का किरन - जाल छाया,
बहते बादल पर इन्द्र धनुष
सतरंगी कविता बन आया ;

मिट गया छनक भर में फिर
क्यों ? मेरा मत यों उपहास करो,
मेरे गीतों के राजा ! तुम
मेरे गीतों में वास करो ।

नभ साफ़ हुआ, तारे चमके,
निशि ने चमकीले गान लिखे,
काले अन्तस में अमर चमक
वाले अपने अरमान लिखे ;

क्यों ऊषा झाड़ू फेर चली !
नभ पर थोड़ा विश्वास करो !
मेरे गीतों के राजा ! तुम
मेरे गीतों में वास करो ।

फिर कैसे चमके गीत कि हाँ,
रवि ने नभ की गोदी भर दी,
दाएँ, बाएँ, ऊपर, नीचे, अणु-
अणु प्रकाश - कविता रच दी ;

'कविता पोंछी'—भेजा क्यों दल-
बल अन्धकार ? न निराश करो !
मेरे गीतों के राजा ! तुम
मेरे गीतों में वास करो।

तुम रहो न मेरे गीतों में
तो गीत रहें किस में बोलो ?
तुम रहो न मेरे प्राणों में
तो प्राण कहें किससे बोलो ?

मेरी कसकों में कसक - कसक
मेरी ख़ातिर वनवास करो !
मेरे गीतों के राजा ! तुम
मेरे गीतों में वास करो।

मील का पत्थर

रूठूँ !—मेरी प्रेम-कथा में,
रानी, इतना स्वाद नहीं है,
और मनूँ, ऐसा भी मुझ में,
कोई प्रणयोन्माद नहीं है।

मैं हूँ सजनि, मील का पत्थर,
अंक पढ़ो चुपचाप पधारो,
मत आरोपो अपनेपन को,
मत मुझ पर देवत्व उतारो।

दर्पण में, मरकत में, सरवर में,
कर लो तुम अपने में दर्शन,
पर मुझ में तुम निज को देखो,
यह कैसा पागल आकर्षण!

जाओ वहाँ कि, सीखे हैं वे,
छबि लेना फिर लौटा देना।
मैं पत्थर हूँ, मुझ पर ऊगा
करता कभी न लेना देना।

वे ही हैं, सन्मुख जाने पर
दिखलाते प्रतिबिम्ब तुम्हारा,
हट जाने पर, धो लेते हैं,
अपने जी का चित्रण सारा!

मैं ग़रीब, क्या जानूँ उतना,
बदल-बदल चमकीला होना?
मेरे अंक अमिट होते हैं,
बेक़ाबू है जिनका धोना।

दौड़-दौड़ कर लम्बी रातें
क्यों छोटी कर आयीं रानी!
बोलो तो पत्थर क्या देवे,
मीठे ओंठ, न खारा पानी!

अपनी कोमल अंगुलियों से,
मेरी निष्ठुरता न लजाओ,
मन्दिर की मूरत में गढ़ कर,
मत मेरा उपहास सजाओ!

जाओ मंज़िल पूरी कर लो,
अभी मिलेंगे पथ के पत्थर,
जिनको तुम साजन कहती हो,
बड़ी दूर पर है उनका घर !

जाकर इतना सा सन्देसा,
मेरा भी तुम पहुँचा देना,—
"फूलों को जो फूल रखो, तो
पत्थर, पत्थर रहने देना।"

क्या मंज़िल पर आ पहुँची हो !
यहीं बनेगा मन्दिर प्यारा ?
जंगल में मंगल देखे ! हम
से बोझीला भाग हमारा।

तुम अपना प्रभु पूजो रानी !
मैं पथिकों को आमन्त्रित कर
रोका करूँ, अमर हो। जाऊँ,
तोड़ो नहीं मील का पत्थर।

अन्धकार

सूर्य जले, चन्दा जले,
उडुगन जलें स - हास,
इनके काजल से न हो
यों काला आकाश ?

तुम देखो, नभ में लगे
अँगारे से ये विधि - बाला के,
या अन्धकार पर बिखरे
फूल पड़े हैं सुर - माला के !

अन्धकार ही पर क्यों सूरज,
अपनी किरनें अज़माता है ?
अन्धकार पर बैठ चाँद क्यों
मधुर चाँदनी उकसाता है ?

अन्धकार में, कवि को क्यों
करुणा की तान सूझ जाती है?
अन्धकार में प्रेमी को क्यों
प्रीतम की हिलोर आती है?

अन्धकार में, विश्व-प्राण यह
वायु घूमती क्यों अलबेली!
अन्धकार में, मंजुल कलियाँ
यों जनती अलबेली बेली!

अन्धकार में, महा एकरसता
क्यों दौड़ी-दौड़ी फिरती?
अन्धकार की गोदी में क्यों
वृक्षों की हैं मणियाँ झरतीं?

अन्धकार खोदूँ? कैसे? इसका
प्यारे अस्तित्व अमर है,
पृष्ठ टूट जाने पर, सुन्दर चित्रण
के मिटने का डर है!

अन्धकार है तो 'किरनीलेपन'
की अगवानी सम्भव है,
अन्धकार है तो क़ीमत का
तेरे उज्ज्वल विमल विभव है।

अन्धकार है तो गरबीले!
तुझे न नज़र लगा पाऊँगा,
अन्धकार है तो पद-ध्वनि पर
मैं तेरे पीछे आऊँगा।

झिड़क नहीं सुन्दर, यों कह कर,
'अन्धकार का कठिन त्रास है!'
श्याम, श्याम तेरा आसन है,
किंतु अमर उज्ज्वल प्रकाश है!

उपालम्भ

क्यों मुझे तुम खींच लाये ?

एक गो - पद था, भला था,
कब किसी के काम का था ?
क्षुद्र तरलाई गरीबिन
अरे कहाँ उलीच लाये !

एक पौधा था, पहाड़ी,
पत्थरों में खेलता था,
जिये कैसे, जब उखाड़ा
गो अमृत से सींच लाये !

एक पत्थर बेगढ़ा सा
पड़ा था जग - ओट लेकर,
उसे और नगण्य दिखलाने,
नगर - रव बीच लाये !

एक वन्ध्या गाय थी
हो मस्त बन में घूमती थी,
उसे प्रिय! किस स्वाद से
सिगार वध-गृह बीच लाये?

एक बनमानुष, बनों में,
कन्दरों में, जी रहा था;
उसे बलि करने कहाँ तुम,
ऐ उदार दधीच लाये?

जहाँ कोमलतर, मधुरतम
वस्तुएँ जी से सजायीं,
इस अमर सौन्दर्य में, क्यों
कर उठा यह कीच लाये?

चढ़ चुकी है, दूसरे ही
देवता पर, युगों पहले,
वही बलि निज-देव पर देने
दृगों को मींच लाये?

क्यों मुझे तुम खींच लाये?

मरण-ज्वार

प्रहारक, बाण हो कि हो बात,
चीज़ क्या, आरपार जो न हो ?
दान क्या, भिखमँगों के स्वर्ग !
प्राण तक तू उदार जो न हो ?

फेंक वह जीत, या कि वह हार,
मिला बलि में प्रहार जो न हो ?
चुनौती किसे ? और किस भाँति ?
कि अरि के कर कुठार जो न हो ?

मरण-ज्वार

हार क्या ?—कलियों का जी छेद,
बिँधा उनमें दुलार जो न हो ?
प्यार क्या ? ख़तरों का झूलना
झूलना बना प्यार जो न हो !

लौह बन्धन, कि वार पर वार,
मधुर-स्वर क्यों ? सितार जो न हो ?
रखे लज्जा क्यों सन्त 'कपास !
पेर कर, तार तार जो न हो !

दिखे हरियाली ? मेघ श्याम.
कृषक चरणोपहार जो न हो ?
शूलियाँ बनें प्रश्न के चिन्ह,
देश का चढ़ा प्यार जो न हो ?

तुम्हारे मेरे बीचों बीच,
प्रणय का बँधा तार जो न हो ?
अरे हो जाय रुधिर बेस्वाद,
लाड़ला मरण-ज्वार जो न हो ?

गान

यह प्रलय का कौन दिन ?
प्रिय कौन सा मधु गान ?
गान ! जब रिपु हो जगाता
भारतीय मसान ?

गान ?—जब करुणा बनी हो
वीरता, अनमोल ?
वीरता जब मरण न्योते
शीश उच्च अडोल ?

गान !—जिसमें प्रलय रोवे,
प्यार क्यों मुसकाय !
गान !—जिनमें प्रलय झाँके,
फिर प्रणय कब आय !

गान !—जिस पर हों पड़े
दुहराहटों के दाग़ !
गान !—जिसकी ललक से
बुझ जाँय अमर चिराग़।

प्राण जो माँगे न, तो
क्या प्राण-धन का गान !
प्राण जो दे-दे न वह भी
प्राण-धन की तान !

गान ? जब मस्तक उठा,
काँपा न नभो वितान !
भिनभिनाती मक्खियाँ भी
लिख रही हैं गान !

सिपाहिनी

चूड़ियाँ बहुत हुईं कलाइयों पर
प्यारे, भुज-दंड सजा दो,
तीर कमानों से सिँगार दो,
ज़रा ज़िरह बख़्तर पहना दो।

जी में सोये से सुहाग। जग
उठो, पुतलियों पर आ जाओ,
बिना तीसरे नेत्र, दृष्टि में
अजी, प्रलय ज्वाला सुलगा दो।

कैसे सैनानी हो?—जो मैं
नहीं सैनिका होने पाती?
कैसे बल हो? अबलापन को
जो मैं नहीं डुबोने पाती?

आदि पुरुष ने, अपनी माया
के हाथों में कौशल सौंपा,
जग के उथल - पुथल कर देने
के मस्ताने बल को सौंपा।

मेरे प्रणय और प्राणों के
ओ सिन्दूर रक्तिमा लाली!
तुम कैसे प्रलयंकर शंकर! जो
मैं रहूँ न दुर्गा, काली?

अर्धरात्रि के सूनेपन में,
प्यारे वंसी बना बजा लो,
मेरी धुन में अपनी साँसें
गूँथ-गूँथ स्वर - हार बना लो।

अंगुलियों से गिन-गिन, मोहन,
मेरे दोपों को दुहरा लो,
ओठों से ओठों पर, अपना
प्रणयमन्त्र लिख-स्वर गहरा लो।

किन्तु सुनहली सूरज की किरनों
पर, क्या यह स्वाद लिखोगे?
सखे! खनकती करवालों पर,
चुड़ियों के सम्वाद लिखोगे?

माना 'जौहर' भी होता था,
मरने के त्यौहारों वाला,
और पतन के अगम सिन्धु से,
तरने के त्यौहारों वाला;

किन्तु आज तो इस मुरली को
रण-भेरी का डंका कर लो,
या कर लो पानी वाली
तलवार, उदार ! मारलो-मरलो !

'जौहर' से बढ़कर, घोड़े पर
चढ़कर, जौहर दिखलाने दो,
चुड़ियाँ हों सुहागिनी, यौवन !
यौवन अपनी पर आने दो।

घर मेरा है ?

क्या कहा, कि यह घर मेरा है ?

जिसके रवि ऊगें जेलों में,
सन्ध्या होवे वीराने में,
उसके कानों में क्यों कहने
आते हो ? यह घर मेरा है !

है नील-चँदोवा तना कि झूमर
झालर उसमें चमक रहे,
क्यों घर की याद दिलाते हो
जब सारा रैन बसेरा है ?

जब चाँद मुझे नहलाता है,
सूरज रोशनी पिन्हाता है,
क्यों दीपक लेकर कहते हो,
यह तेरा है, यह मेरा है ?

ये आये बादल घूम उठे,
ये हवा के झोंके झूम उठे,
बिजली की चम-चम पर चढ़
गीले मोती भू चूम उठे ;

फिर सनसनाट का ठाठ बना,
आ गयी हवा, कजली-गाने,
आ गयी रात, सौगात लिये,
ये गुलसब्बो मासूम उठे।

इतने में कोयल बोल उठी,
अपनी तो दुनिया डोल उठी,
यह अन्धकार का तरल प्यार,
सिसकें बन आयीं जब मलार;

मत घर की याद दिलाओ तुम,
अपना तो काला डेरा है,
कलरव, बरसात, हवा ठंडी,
मीठे दाने खारे मोती,

सब कुछ ले, लौटाया न कभी,
घर वाला महज़ लुटेरा है।

हो मुकुट हिमालय पहनाता,
सागर जिसके पद धुलवाता,
यह बँधा बेड़ियों में मन्दिर,
मसजिद, गुरुद्वारा मेरा है!

क्या कहा कि यह घर मेरा है?

मध्य की घड़ियाँ

'आदि' भूली, गोद की गुड़िया रही,
भूलना ही याद आता है मुझे,
'अन्त' में अन्तर हज़ारों मील का,
मैं नहीं, वह देख पाता है मुझे।

किन्तु दोनों के स्मरण के बोझ से,
'जी' बचाकर, एक स्वर गुंजारती,
'मध्य की घड़ियाँ, मधुर संगीत हैं,
हूँ उन्हीं पर मस्त लहरें वारती।'

'कौनसी हैं मस्त घड़ियाँ, चाह की ?
हृदय की पग-डंडियों की, राह की ?'
'दाह की ऐसी, कनक कुन्दन बनें,
मान की, मनुहार की, हैं आह की !'

भिन्नता की भीत, सहसा फाँद कर,
नैन प्रायः जूझते लेखे गये,
बिन सुने हँसते, चले चलते हुए,
बिना बोले बूझते देखे गये।

नित्य ही बेचैन कारागार था,
रोज़ कैदी बन्द कर लाये गये,
कामिनी कहने लगी, 'दिन चाह का,'
भामिनी बोली, 'हमारे ब्याह का !'

किन्तु यह दिन ब्याह का, यह गालियाँ,
जानती हैं सिर्फ़ 'फाँसीवालियाँ !'
या कि फिर मंसूर सा दूल्हा मिले,
मधुर यौवन-फूल शूली पर खिले !

रो रही क्यों बालिके कलिके ! बता ?
'नेक हँस पाऊँ, अरी आली कहाँ ?
तोड़ प्यारे के चरण पर डाल दे,
है कहाँ ? प्यारा हृदय-माली कहाँ ?'

हिमकिरीटिनी

री सजनि, वन-राजि की शृंगार।

समय के वन-मालियों
की क़लम के वरदान,
डालियों, काँटों भरी
के ऐ मृदुल अहसान।

मुग्ध मस्तों के हृदय के
मुँदे तत्व अगाध,
चपल अलि की परम
संचित गूँजने की साध।

बाग़ की बाग़ी हवा
की मानिनी खिलवाड़,
पहन कर तेरा मुकुट
इठला रहा है झाड़।

खोल मत निज पंखियों का द्वार,
री सजनि, वन-राजि की शृंगार।

आ गया वह वायु-वाही
मित्र का नव राग,
बुलबुलें गाने लगी हैं
जाग प्यारी जाग!

प्रेम-प्यासे गीत गढ़,
तेरा सराहें त्याग,
रागियों का प्राण है,
तेरा अतुल अनुराग।

पर न वनदेवी, न सम्पुट
खोल, तू मत जाग,
विश्व के बाज़ार में
मत बेच मधुर पराग!
खुली पंखड़ियाँ, कि तू बे-मोल,
हाट है यह; तू हृदय मत खोल।

वृक्ष के अन्तर हृदय की
री मृदुलतर शक्ति,
फलों की जननी, सुगन्धों
की अमर अनुरक्ति!

छोड़ तू बड़भागिनी,
ये उभय लालच छोड़,
आज तो सिर काटने
में हो रही है होड़!

अरी व्यर्थ नहीं, कि
प्रियतम माँगता है दान;
ले अमर तारुण्य
अपने हाथ, हो क़ुरबान!

मिटेंगी?–मिट जाँय चंचल चाह,
मुँदी रह, तू हो न अरी तबाह!

हँस रही है और हँस
ले ख़ूब, तू मत बोल,
भोगियों के चरण की
कुचलन बनाकर मोल।

तुच्छ से अनुराग पर,
वे खो रही हैं त्याग,

राग पर उनके, हुआ
अपमान-भोगी बाग़ ।
चाह तेरी भी बनेंगी,
नाश का गोदाम ?
क्या तुझे भी चाहिए
तारुण्य का नीलाम ?
सँभल, अलिगण छू न पाँय पराग.
भैरवी सोरठ समझ, मत जाग !

क्या कहा, "कैसे सहूँ
इस कोकिला की हूक ?
और मैना की मधुरता
कर रही दो टूक ?
मृदुल चिड़ियों की चहक
पर महक है बेचैन ?
यह सवेरे की हवा,
आगयी बनकर मैन ?"
ठीक है, तब भी छिड़े
तेरा प्रलय से जंग,
री प्रसादिनि, हो न तेरा
वह तरुण तप भंग !

भावुकों के ऐ अमित अभिमान,
जाग मत, अघ पर न कर अवसान।
मित्र के कर फेंकते
तुझ पर सुनहली धूल;
डालि पर तेरी रही
निर्दय मुनैया झूल।
कर रहे तुझको हवा
पत्ते, अपनपा भूल,
कामिनी का, दे रहा
झाड़ें, प्रमत्त दुकूल।
पर न इनकी मान तू,
हैं शाप, ये वरदान,
हिम-किरीटिनि ने मँगाये
हैं सखो तव प्राण।
बिना बोले, मातृ-चरणों डोल,
और उस दिन तक हृदय मत खोल!
जब सिपाही उठें,
सेनानी उठे ललकार,
मातृ-बन्धन-मुक्ति का
जिस दिन मने त्यौहार,

जब कि जन-पथ लाल हों,
हो किसी की तलवार,
आयगा सिर काटने
उस दिवस मालाकार ;

करेगा हुंकार, कलियाँ
बन्द, हों तैयार !
सूजियों से छेदने में
आज उनकी बार !

यह मधुर बलि. हो विजय का मोल,
मानिनी, तब तक हृदय मत खोल।
हिमकिरीटिनि की परम उपहार !
री सजनि, वन-राजि की शृंगार।